अकबर—(अचरज से) खूब हैं। लेकिन उनको उधर से फोड़ने का भी तो उपाय किया गया है। (आसफ़ख़ाँ और मान-सिंह की ओर देखता है)

आसफ़०—जी हाँ, जहाँपनाह। उन्हें बहकाने, भड़काने और इधर मिला लेने की पूरी कोशिशें की जा रही हैं, और इसमें कामयाबी होने की भी उम्मीद है।

बदन०—क्योंकि वहाँ के और भी कई जागीरदार हमारे साथ हमदर्दी रखते हैं।

अकबर—(बदनसिंह से) राजा साहब, इन इतने मित्रों के सामने मैं आपसे यह बात कह देना चाहता हूँ कि मैं आपके देश पर, अपने मन से, चढ़ाई नहीं कर रहा हूँ; क्योंकि भगवान् ने मुझे बहुत दे रक्खा है, और उसका प्रबंध जैसा कुछ है, आप देख ही रहे हैं; और उस प्रबंध के पीछे मैं कितना हैरान रहता हूँ, यह भी आपसे छिपा नहीं है।

बदन०—जहाँपनाह, क्या कहना है; राम-राज हो रहा है।

अकबर—जब तक आपने मुझसे कहा नहीं, मुझ पर ज़ोर नहीं डाला, तब तक मेरा उधर बहुत कम ध्यान था—गो था शायद कुछ ज़रूर। किंतु जब आपने यह कहा कि वहाँ की प्रजा महारानी दुर्गावती और उनके मंत्री के अत्याचार के बोझ से पिसी जाती है, तभी—यानी आपकी बात का विश्वास करके—प्रजा की रक्षा ही की नीयत से, मैं इस काम को उठा रहा हूँ, और आप ही को इसका कुल भार सौंपता हूँ—यहाँ

दुर्गावती

गंगा-पुस्तकमाला का उंचास

दुर्गावती

[ऐतिहासिक नाटक]

लेखक

बदरीनाथ भट्ट बी० ए०

(लखनऊ-विश्वविद्यालय में हिंदी-अध्यापक
लबड़धोंधों, विवाह-विज्ञापन, बाल-नीति-
आदि के रचयिता)

मिलने का पता—

गंगा-ग्रंथागार
३६, लाटूश रोड
लखनऊ

तृतीयावृत्ति

सजिल्द १॥)] सं० १९९० वि० [सादी १)

1933

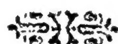


प्रकाशक

श्रीदुलारेलाल भार्गव

गंगा-पुस्तकमाला-कार्यालय

लखनऊ



प्रथमावृत्ति	सं० १९८२
द्वितीयावृत्ति	सं० १९८६
तृतीयावृत्ति	सं० १९९०

मुद्रक

श्रीदुलारेलाल भार्गव

अध्यक्ष गंगा-फ़ाइनआर्ट-प्रेस

लखनऊ



श्रीदुलारेलाल भार्गव
(सुधा और गंगा-पुस्तकमाला के संपादक और एकमात्र स्वामी)

मातृभाषा की सेवा में तन-मन-धन से संलग्न
हिंदी के सुकवि तथा सुलेखक
सुधा-संपादक
मित्रवर

श्रीदुलारेलालजी

भार्गव
के
कर-कमलों में
सप्रेम भेंट

बदरीनाथ भट्ट

दुर्गावती



श्रीयुत पं० बदरीनाथ भट्ट बी० ए०

वक्तव्य

हिंदी-संसार के आधुनिक सुलेखकों और सुकवियों में पंडित बदरीनाथजी भट्ट का स्थान बहुत ऊँचा है। आपके सुंदर गीत, जो पूज्य पंडित महावीरप्रसादजी द्विवेदी के ज़माने में, सरस्वती में, छपा करते थे, खड़ी बोली के काव्य-साहित्य में अपना विशेष स्थान रखते हैं। हमें खूब याद है, लोग उन्हें बड़े चाव से पढ़ते और पसंद करते थे। उस समय उनकी ख़ासी धूम और चर्चा थी, और आज भी लोग उनके लिये लालायित देखे जाते हैं। हास्य-रस के ललित लेख लिखने में भी भट्टजी बहुत पटु हैं। किसी समय कानपुर के 'प्रताप' में प्रकाशित होनेवाले 'गोलमालानंद' के लेख और टिप्पणियाँ हास्य-प्रिय पाठकों को कभी भूलने की नहीं। इन हास्य-व्यंग्य की क़ैंचियों द्वारा अनेक अनधिकारी और झगड़ालू लेखकरूपी अनावश्यक और हानिकारक वनस्पतियों को साहित्य-उपवन से दूर करके उसे साफ़ रखने में आप सुचतुर माली का काम करते थे। किंतु आपकी सबसे उत्कृष्ट और महत्व-पूर्ण रचनाएँ हैं आपके नाटक। इन्हीं की बदौलत आपका स्थान, जैसा हम शुरू ही में कह आए हैं, हिंदी-साहित्य-संसार में अत्यंत उच्च है। बोल-चाल की भाषा में सरल, सुंदर, मनोरंजक और उत्कृष्ट नाटक लिखने में आप इस समय अपना सानी नहीं रखते। आपके लिखे चंद्रगुप्त, तुलसीदास, वेन-चरित, चुंगी की उम्मेदवारी आदि नाटक हमारे साहित्य की शोभा-वृद्धि कर रहे हैं।

हिंदी में मौलिक नाटक बहुत ही कम हैं—इतने कम कि उँगलियों पर गिने जा सकते हैं। अभी हमारे यहाँ अन्य भाषाओं—विशेषकर बँगला—से अनूदित नाटकों ही का अधिक प्रकाशन, और

इसीलिये पठन-पाठन, हो रहा है ; मौलिक नाटक लिखने की ओर लोगों का ध्यान कम दिखलाई देता है । हिंदी के विद्वान् लेखकों की मौलिक नाटक-निर्माण के प्रति यह उदासीनता अवश्य परिताप-जनक है । किंतु हमारे इस कथन का यह अभिप्राय नहीं कि अन्यान्य भाषाओं के अच्छे-अच्छे नाटक हिंदी में रूपांतरित ही न किए जायँ । अवश्य किए जायँ ; किंतु साथ ही मौलिक नाटक भी तेज़ी के साथ तैयार कर हिंदी-संसार को भेंट किए जाने चाहिए । जो नाटक अन्य भाषाओं से हमारी भाषा में आते हैं, उनमें हमारे, अर्थात् हिंदी-भाषा-भाषी प्रांतों के, समाज का चित्र नहीं होता ; होता है केवल अन्य समाजों का ही प्रतिबिंब । इसीलिये वे हमारे लिये उतने उपयोगी नहीं होते । नाटकों में, श्रव्य और दृश्य दोनो ही होने के कारण, मानसिक सुधार के लिये साहित्य के अन्य अंगों—काव्य, उपन्यास आदि—से अधिक शक्ति होती है । अतएव यदि हम अपने समाज का कल्याण चाहते हैं, तो हमें चाहिए कि मौलिक रूपकों से मातृ-भाषा के रुचिर रूप को सँवारने में कटिबद्ध हो जायँ । हर्ष की बात है, हिंदी की सर्वश्रेष्ठ सीरीज़ गंगा-पुस्तकमाला के हिंदी-हितैषी संचालकों ने, हिंदी की इस कमी का अनुभव करके, मौलिक नाटकों का प्रकाशन शुरू कर दिया है । पूर्व भारत, कर्बला, वरमाला, ये तीन उत्कृष्ट नाटक उक्त माला में गूँथे जा चुके हैं, और अब यह भट्टजी-निर्मित नया नाटक निकाला जा रहा है ।

दुर्गावती ऐतिहासिक नाटक है । दुर्गावती गढ़ा-मंडले (जबलपुर के निकट) की रानी थीं । इस सुविशाल राज्य पर, जिसे 'आईने-अकबरी' में गोंडवाना लिखा गया है, गोंड-राजे राज्य करते थे । परम पराक्रमी राजा संग्रामसिंह के शासन-काल में इस राज्य की बड़ी उन्नति और वृद्धि हुई । इन्हीं के पोते वीर दलपतिशाह ने, महोबे पर चढ़ाई करके, चंदेल-राज शालिवाहन को युद्ध में परास्त किया,

और उनकी परम रूपवती और सर्व-सद्गुणवती पुत्री दुर्गावती का हरण करके उनसे विवाह कर लिया। किंतु सती दुर्गावती के साथ सुख से राज्य-कार्य चलाते हुए राजा दलपतिशाह को अभी ७-८ वर्ष ही बीते थे कि वह अकाल ही काल-कवलित हो गए। स्त्री के लिये पति की मृत्यु से बढ़कर संसार में और कोई दुःख नहीं होता, विशेषकर भरी जवानी में। परंतु तरुण दुर्गावती ने इस अनभ्र वज्रपात में असीम धैर्य का परिचय दिया। वह अपने पुत्र-रत्न शिशु वीरनारायण के ख़याल से अन्य राजपूत-रमणियों की तरह सती नहीं हुईं; वरन् उसके लालन-पालन और शिक्षा-दीक्षा में संलग्न रहकर उन्होंने अपना शोक ही भुला दिया। अब अल्पवयस्क दुर्गावती को स्वयं ही अपने पुत्र का राज्य सँभालना पड़ा। और, उन्होंने उसे सुचारु रूप से सँभाला ही नहीं, वरन् मालवाधिपति बाज़बहादुर के देश को जीतकर भोपाल आदि प्रांत भी अपने राज्य में मिला लिए। वह बड़ी कुशाग्र-बुद्धि, शासन-कार्य-कुशल और साहसी थीं। स्वयं हाथी पर चढ़कर युद्ध का संचालन करतीं। अस्त्र-शस्त्र चलाने में बड़ी निपुण थीं, ग़ज़ब की निशानेबाज़। अपने मंत्री बाबू आधारसिंह की सहायता से, जो जाति के कायस्थ और एक धुरंधर राजनीतिज्ञ थे, देवी दुर्गावती ने, अपने देश की रक्षा के लिये, महाशक्तिशाली मुग़ल-सम्राट् तक से लोहा लिया था, उनके दाँत खट्टे कर दिए थे, और अंत में देश-रक्षा के असफल प्रयत्न में ही काम आई थीं। इसी रमणी-रत्न का यह वीर चरित्र इस नाटक में अंकित किया गया है। इस समय स्वराज्य की आवाज़ सारे देश में, एक सिरे से दूसरे सिरे तक, गूँज रही है, अतः देश-प्रेम के भावों से भरे हुए इस नाटक की रचना समयानुकूल ही हुई है।

चारु चरित्र-चित्रण, स्वाभाविकता आदि सभी नाटकीय गुणों से यह नाटक सुभूषित है। इसकी भाषा नाटकोचित—सरल, सरस,

मुहावरेदार और ज़ोरदार—है। पात्रों की बातें लंबी स्पीचें नहीं हो गई हैं। दृश्यों का सन्निवेश ऐसा है कि रंग-मंच के लिये असंभव या असाध्य न होगा। गीत गाने और समझे जाने लायक़ हैं। मतलब यह कि हिंदी के अन्य मौलिक नाटकों के अवगुण इसमें नहीं आने पाए हैं। यह सुंदर नाटक सर्वथा अभिनयोपयोगी है। इसे देखने या पढ़ने में लोगों का जी लगेगा, ऊबेगा नहीं।

आशा है, हिंदी-संसार में इस नाटक का समुचित स्वागत होगा।

लखनऊ,
१२।११।२९

दयाशंकर दुबे
(एम्० ए०, एल्-एल्० बी०)

संपादकीय निवेदन

हर्ष की बात है, हिंदी-संसार ने भट्टजी के इस नाटक का विशेष आदर किया है, जिससे इसका अब तीसरा संस्करण निकालना पड़ा है। यह नाटक पंजाब की भूषण-परीक्षा और यू० पी० की इंटर-मीडिएट-परीक्षा में कोर्स है। अतः इन संस्थाओं के हम अत्यंत कृतज्ञ हैं।

संपादक

पात्र-सूची

पुरुष

अकबर—सुप्रसिद्ध मुग़ल-बादशाह

आसफ़ख़ाँ—बादशाही सूबेदार

पृथ्वीराज—अकबर का दरबारी, बीकानेर-नरेश का भाई

बीरबल टोडरमल मानसिंह ख़ानख़ाना	अकबर के मंत्री

अधारसिंह—रानी का मंत्री

सुमेरसिंह—रानी का सेनापति, सुमति का भाई

वीरनारायण—रानी का पुत्र

बदनसिंह—रानी का एक बाग़ी जागीरदार

जीतू—अधारसिंह का नौकर

गिड़धाड़ीसिंह छिपेलूसिंह भगेलूसिंह	रानी के जागीरदार

घरबारीसिंह—गिड़धाड़ीसिंह का पुत्र

माली, चोबदार, दूत, बालक, गंगा भाट, तानसेन, सिपाही, गँवार, राज-कर्मचारी, सरदार लोग, आत्माएँ, यक्ष आदि

स्त्री

दुर्गावती—गढ़ा-मंडला की रानी

सुमति—बदनसिंह की स्त्री, सुमेरसिंह की बहन

शरीर-रक्षिकाएँ, नर्तकियाँ।



रानी दुर्गावती

दुष्ट-दनुज-दल-दलन कों लिए तीक्ष्ण तरवार ;
देश-शक्ति दुर्गावती दुर्गा को अवतार।

दुलारेलाल भार्गव

दुर्गावती

पहला अंक

पहला दृश्य

स्थान—आगरे के क़िले में जमना की तरफ़ की सैरगाह

(अकबर सोचता हुआ अकेला घूम रहा है)

अकबर—वैसे तो पहले ही से मेरी उधर निगाह थी; लेकिन आज जब से आसफ़ख़ाँ के मुँह से गढ़े-मंडले की दौलत और शान-शौक़त का हाल सुना है, तब से यह सवाल मेरे मन में और भी खलबली मचा रहा है कि क्या सचमुच मैं शाहंशाह हूँ? या यों ही दुनिया मुझे ख़ुश करने के लिये मुझसे ऐसा कहती है? नहीं-नहीं, 'शाहंशाह' 'शाहंशाह' कह-कहकर मुझे चिढ़ाया जा रहा है—मुझे बनाया जा रहा है। वरना जिसके मुक़ाबिले पर औरतें तक स्वाधीन रानियाँ हों, वह शाहंशाह कैसा? अभी बहुत कुछ करना बाक़ी है, बहुत कुछ करना बाक़ी है। माना मैंने कि चित्तौड़ फ़तह हो गया; लेकिन तो भी—

हारा हुआ व' राना ऊधम मचा रहा है,

फ़ौजों को पर्वतों पर मेरी नचा रहा है—

और दुर्गावती ! (क्रोध से) अभी तक तू अपने घर में आज़ाद बैठी है ! मगर कब तक ? पानी में रहकर मगर से वैर कब तक ? जैसे बाज़ के हमले से चिड़िया नहीं बच सकती, वैसे ही तू भी मेरे हमले से अब न बचेगी।

(पृथ्वीराज राठौड़ का प्रवेश)

पृथ्वी०—(आप-ही-आप) आज तो जहाँपनाह की दशा विचित्र ही देखता हूँ !

किस पर भला यों श्राज यह त्यौरी चढ़ी है आपकी ?

क्यों, चोट किस पर होनेवाली है तने इस चाप की ?

हो क्रुद्ध यों यमराज ने किस पर उठाया दंड है ?

किसका प्रचंड घमंड होने को अभी शत खंड है ?

तनिक पूछूँ तो—(अकबर से) श्रीमहाराजाधिराज, शाहंशाह, आज जहाँपनाह को किस चिंता ने घेरा है, जो—

अक०—(पृथ्वीराज की ओर देखकर) आओ पृथ्वीराज, आओ।

पृथ्वी०—जहाँपनाह,

क्रुद्ध हुए हैं भला आज यों किस अत्याचारी पर आप ?

कौन मेटनेवाला है, ख़ुद मिटकर, दुनिया का संताप ?

भला कौन-से पापी का घट घड़ा फूटनेवाला है ?

कौन शख़्स है, जिसका दम से पड़नेवाला पाला है ?

कौन मूर्ख है वह, सोते अजगर को जिसने छेड़ा है ?
गहरे सागर में क्यों, कौन डुबाता अपना बेड़ा है ?
सचमुच कोई करता होगा दीन प्रजा पर अत्याचार,
देने का जिसको कि दंड करते हैं जहाँपनाह विचार।

अक०—पृथ्वीराज, यह 'शाहंशाह' और 'महाराजाधिराज' कह-कहकर तुम लोग कटे पर नमक क्यों छिड़कते हो ?

पृथ्वी०—(चकित होकर) किस तरह ?

अक०—आज सवेरे जिस वक्त कड़ा-मानिकपुर का सूबेदार आसफ़ख़ाँ दरबार में हाज़िर हुआ था, क्या उस वक्त तुम मौजूद न थे ?

पृथ्वी०—जहाँपनाह, बंदा हाज़िर था।

अक०—तुमने सुना था कि गढ़े-मंडले की महारानी और उस राज की दौलत के बारे में उसने क्या कहा था ?

पृथ्वी०—(चिंतित-सा होकर) जहाँपनाह, सुना था।

अक०—पृथ्वीराज,

रह सकती है भला कहीं भी एक म्यान में दो तलवार ?
रहते देखे एक जगह क्या कभी किसी ने सिंह सियार ?
इस हिंदोस्तान का हूँ मैं अगर वाक़ई शाहंशाह,
तो कैसे रह सकता हूँ चुप, बिना किए मैं उसे तबाह ?

पृथ्वी०—(आप-ही-आप)

है गोंड-राजपूतों का राज वह अकेला,
बाँधे हुए है अब तक स्वाधीनता का सेला।

उस पर भी आज इसने अपनी कुदृष्टि डाली!
उसको भी फूल-सा यह तोड़ेगा बनके माली।
चित्तौड़को फ़तह कर इसका न जी भरा कुछ!
हैं राजपूत हिजड़े, करते न चूँचरा कुछ—
अपनी स्वतंत्रता का जो दूध यों पिलाकर,
इस साँप के ज़हर को ख़ुश होते हैं बढ़ाकर।

(प्रकट) जहाँपनाह, छोटी-मोटी चुहियों से युद्ध करने की इच्छा करना सिंहों को शोभा नहीं देता। कहा है, वैर और प्रीति बराबरवालों से करनी चाहिए। दूसरे, वे गोंड-राजपूत बड़े भारी लड़ाके हैं, सहज में ही वस में आने के नहीं, किंतु संख्या में थोड़े होने के कारण आपकी बराबरी के भी नहीं; इसलिये मेरी तो राय यह है कि आसफ़ख़ाँ की बातों में जहाँपनाह न आवें। आसफ़ख़ाँ उनके देश को दो बार लूटने की चेष्टा करके हार चुका है। इसलिये जहाँपनाह को उभाड़कर और उनके राज्य को उजाड़कर अपनी खिसियानपट मिटाना चाहता है। जहाँपनाह स्वयं ही सोच लें कि ऐसी दशा में उसकी सलाहें मानना कहाँ तक ठीक होगा।

अक०—पृथ्वीराज, खरी बात कहने की तुम्हारी साख है; लेकिन यह तो बतलाओ कि क्या वे जंगली गोंड चित्तौड़ के सीसोदिया राजपूतों से भी ज़्यादा बहादुर हैं? याद रक्खो, मुझे उनका मुल्क नहीं चाहिए—उनकी दौलत चाहिए; उनकी

आज़ादी नहीं चाहिए—उनकी ऐंठ चाहिए। जिन लोगों ने बाज़बहादुर और न-जाने कितनों के दाँत खट्टे कर दिए, उनसे लोहा बजाना चूहों और चुहियों से लड़ना नहीं, जगे हुए शेरों को ललकारकर मारना है।

पृथ्वी०—(सोचकर) जहाँपनाह यही चाहते हैं न कि महारानी दुर्गावती जहाँपनाह को अपना हितैषी समझे ?

अक०—हाँ, और अपना राज मुझे दे, फिर चाहे मैं उसको वापस ही दे दूँ।

पृथ्वी०—तो जहाँपनाह ने इसके लिये क्या उपाय सोचा है ?

अक०—तलवार।

पृथ्वी०—और यदि विना तलवार चलाए ही काम हो जाय ? जहाँपनाह—

जो मरता हो मिठाई से, तो फिर क्यों विष दिया जावे ?
लड़े क्यों वास्ते उसके, जो अपने आप आ जावे ?

अक०—पृथ्वीराज, तुम्हारा कहना ठीक है; मगर वह हो नहीं सकता, जो तुम सोच रहे हो। तुम-सरीखे सीधे-सच्चे और ठेठ राजपूत इन मामलों के दाँव-पेचों को नहीं समझ सकते।

पृथ्वी०—जहाँपनाह, अपराध क्षमा हो, मुझे तो इनमें समझने के लिये ऐसी कुछ गूढ़ बात दिखलाई नहीं देती—

मतलबी सरदार है वह आपको भड़का रहा,
है नहीं बादल जहाँ, बिजली वहाँ कड़का रहा।

आपके मन-सिंधु में तो शांति रहती थी बड़ी,
आज बहकावे की मछली है उछलती हर घड़ी !

अक०—पृथ्वीराज, तुमने मुझे ऐसा भोला-भाला कब से समझ लिया कि मैं हर किसी के बहकावे में आ जाऊँ और आगे-पीछे की कुछ न सोच सकूँ ? राजा साहब,

सैकड़ों आँखें हैं मेरी, कान भी हैं बेशुमार,
देखता सुनता हूँ कुछ, करता हूँ कुछ मन में विचार।
मैं वो सागर हूँ कि जिसमें आग है भीतर भरी,
मैं वो चिंगारी हूँ सूखी घास जिससे हो हरी।
एक आसफ़ख़ाँ बेचारा मुझको क्या भड़कायगा ?
भीगा तिनका खुद है,भुस में आग क्या व'लगायगा ?

(पृथ्वीराज का चुप हो जाना, आसफ़ख़ाँ का प्रवेश)

अक०—आसफ़ख़ाँ, (पृथ्वीराज की ओर इशारा करता हुआ) हमारे राजा साहब की राय है कि अगर कोशिश की जाय, तो बग़ैर लड़ाई छेड़े ही गढ़-मंडले की महारानी हमको अपना सरपरस्त मान लेंगी। क्या यह मुमकिन है ?

आसफ़०—जहाँपनाह, हरगिज़ नहीं—

झुक सकता है सूरज, लेकिन दुर्गावती नहीं झुक सकती ;
रुक सकती है जमना, पर रानी की तेग़ नहीं रुक सकती।
बिजली है वह बाज़बहादुर तक को झुलसाया है जिसने,
अनगिनती रजवाड़ों को पामाल किया—खाया है जिसने।

(अकबर पृथ्वीराज की ओर देखता है)

पृथ्वी०—आसफ़ख़ाँ, व्यर्थ बढ़ा-चढ़ाकर बातें करके एक बेचारी अबला के विरुद्ध जहाँपनाह को क्यों भड़काते हो? तुम उसके देश को लूटना चाहते थे, परंतु ऐसा न कर सके; इसीलिये उस पर खार खाए बैठे हो, और उसका सर्वनाश करा-कर अपनी झेंप उतारना चाहते हो। परंतु याद रक्खो कि जुगनू अँधेरे का नाश नहीं कर सकता और सूर्य कर देता है, तो इससे जुगनू की कुछ प्रशंसा नहीं होती और न दुनिया में उसको अधिक मान ही मिलता है।

आसफ़०—राजा साहब, आप ग़लती पर हैं। जिस बात को आपने अपनी आँखों से नहीं देखा, उसके बारे में मन-मानी राय क़ायम रखना आपको लाज़िम नहीं है। ज़रा मेरे साथ चलिए और सब हाल अपनी आँखों से देखिए, तब कहि-एगा कि दुर्गावती बेचारी अबला है या हम और आप बेचारे अबले। (अकबर से) जहाँपनाह, समुद्र की थाह भले ही मिल जाय, लेकिन उस मुल्क की दौलत की थाह नहीं मिल सकती। निहत्थे रहकर भी शेरों को बस में कर लेना मुमकिन है, लेकिन उस मुल्क के रजपूतों से फ़तह पाना मुश्किल है।

पृथ्वी०—(ताने के साथ) तुम फ़तह पा आए और धन की थाह ले आए हो न!

आसफ़०—(क्रोध से) तभी तो कहता हूँ, अब तक जहाँ-पनाह ने गीदड़ों को ही बस में किया है, शेरों को नहीं।

पृथ्वी०—(क्रोध से तलवार निकालकर) बस ख़बरदार ! गुलाम ! पाजी ! हम लोगों को गीदड़ बतलाता है ! अपने सिर को सँभाल—

आसफ़०—(मुस्किराकर धीरे से)

अपना सारा मुल्क नज़र कर हुआ शेर बनने का चाव,
अपनी राजकुमारी देकर देते हो मूछों पर ताव !!

अक०—(ज़ोर से) आसफ़ख़ाँ ! क्या बकते हो ? क्या तुम होश में नहीं ?

पृथ्वी०—(तलवार पटककर आप-ही-आप)

राजपूत की जाति पर पड़ी आज है गाज ;
हाय गई वह वीरता ! हाय गई वह लाज !
जिसका हमको गर्व था, पड़ी उसी पर धूल ;
इससे तो अच्छा यही, हों क्षत्रिय निर्मूल ।

अक०—राजा साहब, अफ़सोस न करो; तलवार उठाओ। तुम हमेशा ज़रा-ज़रा-सी बातों का इतना ख़याल किया करते हो ! और तो कोई भी इतना नहीं करता। देखो, और भी तो तुम्हारे भाई रजपूत हमारी खिदमत में हैं।

पृथ्वी०—(आप-ही-आप) क्या हम लोग सच्चे राजपूत हैं ? हमारे राज में घोड़ा-गाड़ी पर कोई भी नहीं चढ़ सकता, और न कोई छतरी लगा सकता है, तो क्या इतने से ही हम क्षत्रिय कहलाने के योग्य हैं ? शोक !

जली रस्सी का बल है ऐंठ सारी,
बहाना, ढोंग, छल है ऐंठ सारी ;

नज़र करके ज़मी, ज़र, ज़न, सभी कुछ-
ये मर्दों की नक़ल है ऐंठ सारी।

अक०—आसफ़ख़ाँ, तुमको वात सोच-समझकर मुँह से निकालनी चाहिए। राजा साहब ने ठीक कहा कि तुम गोंड राजपूतों से दो बार हार चुके हो। जब तुम ख़ुद उनसे हारकर भाग चुके हो, तो भला वतलाओ कि किस बिरते पर अपने को वहादुर समझते हो?

आसफ़०—(हाथ जोड़कर) जहाँपनाह, वदतमीज़ी का इज़हार जो कुछ भी इस गुलाम से हुआ, वह तैश के सबब। उसके लिये यह गुलाम वहुत ही शरमिंदा है, और जहाँपनाह से और राजा साहब से मुआफ़ी का ख़्वास्तगार है। मगर जहाँपनाह, काफ़ी फ़ौज का बंदोवस्त करके इस गुलाम के तईं हुक्म फ़रमाएँ, तो यह गुलाम अकेला ही उस मुल्क को फ़तह करके जहाँपनाह का झंडा वहाँ गाड़ सकता है।

अक०—यह ठीक है। और आसफ़ख़ाँ, यक़ीन रक्खो कि उस मुल्क के सर करने के लिये तुम्हीं तैनात किए जाओगे; मगर राजा साहब ने जो सलाह दी है, पहले उसी के मुताबिक काम करना ठीक होगा। अच्छा, भला वतलाओ तो, महारानी को छोड़कर वहाँ और कौन शख़्स ऐसा है, जिसकी वदौलत उस मुल्क का इंतज़ाम इस ख़ूबी के साथ हो रहा है? क्योंकि अकेली महारानी से तो ऐसा होना मुमकिन नहीं मालूम होता।

आसफ़०—जहाँपनाह, अधारसिंह कायस्थ, जो वहाँ का दीवान है, दरअस्ल उस राज को 'सोने में सुहागा' मिल गया है। एक तो रानी ख़ुद ही बहादुर और ज़ी-अक़्ल, दूसरे दुनिया-भर के छल-छंदों को समझनेवाला अधारसिंह-सरीखा वफ़ादार दीवान! जैसे किसी बेशक़ीमती रथ में बेशक़ीमती अरबी घोड़ा जोत दिया गया हो।

अक०—अच्छा, हाँ—(कुछ सोचता हुआ) तो पहले महारानी को ख़त लिखकर अधारसिंह को तलब किया जाय, और अगर महारानी उसको यहाँ भेजना मंज़ूर न करें, तो उनसे जंग का ऐलान कर दिया जाय—

आसफ़०—दुरुस्त है।

अक०—मेरी समझ में कुछ दिनों तक अधारसिंह के वहाँ से बाहर रहने पर एक बार तो राज का सब काम तितर-बितर हो ही जायगा—

कैसे चलेगा दर्रा, होगा न जब कि मंत्री ?
कैसे बजेगा बाजा, होगा न जब बजंत्री ?

आसफ़०—उम्मीद तो है।

अक०—उस वक़्त अगर ज़रूरत समझी गई, तो चढ़ाई कर दी जायगी।

पृथ्वी०—जहाँपनाह, अब कुछ मैं भी अर्ज़ किया चाहता हूँ। यदि जहाँपनाह को लड़ाई छेड़नी ही है, तो अभी छेड़ दीजिए। मित्रता के बहाने मंत्री को बुलाकर क़ैद करना और

बाद को हमला करना किसी भले आदमी को सामने से मित्र बनाकर उसकी पीठ में छुरा भोंकने के बराबर है।

(आसफ़ख़ाँ से)

जिसे हो मारना, उसको सरे मैदान मारो तुम,
पिलाकर मित्रता-मदिरा न यों गरदन उतारो तुम।

(अकबर से)

कि सत्ता में हैं चढ़कर और ताक़त में हैं बढ़कर हम,
तो धोखेबाज़ कहलाकर करें क्यों शान अपनी कम?

अक०—राजा साहब, आपका कहना दुरुस्त है, मगर किसी-किसी मरीज़ को चीरा-फाड़ी के पहले बेहोश कर देने की ज़रूरत होती है। बस, चलो आसफ़ख़ाँ, महारानी को ख़त लिखवा दें। आइए राजा साहब! (दोनो गए)

पृथ्वी०—(लंबी साँस लेकर) हे स्वतंत्रते!

न छोड़ी जब कसर हमने तुम्हें याँ से भगाने में,
तो जाकर आसरा तुमने लिया था गोंडवाने में।
मगर जो ज्योति हलकी-सी वहाँ पर टिमटिमाती है,
बुझाने को उसे कुछ देर में ही आँधी आती है।

(पृथ्वी पर पड़ी हुई अपनी तलवार की ओर देखता हुआ) हा शोक! हे रजपूती तलवार, तेरी आज यह दशा!!

दुश्मन को डाटती थी, अब धूल चाटती है,
लज्जा बचानेवाली! लज्जा से पाटती है;

यह फूट की कृपा है, जो कर्म तेरा बदला ,
ग़ैरों की मित्र बनकर घरकों को काटती है ।

(तलवार उठाता हुआ)

उठ-उठ, अब भी समय है। (निराशा से देखकर) हुँः, नहीं, नहीं उठेगी, सोती रहेगी और बरसों सोती रहेगी। अच्छा, सोती रह। इस भरतखंड से जब तक क्षत्रिय-जाति का नाम-निशान न मिट जाय, तब तक सोती रह। अगर नींद में या सपने में कभी चलने की इच्छा हो, तो घरवालों ही पर चल। हमें मिटा दे—भवानी ! हम इसी लायक़ हैं।

दूसरा दृश्य

स्थान—मंडले में एक बग़ीचे के पास

(राव गिड़धाड़ीसिंहजी आप-ही-आप बातें करते हुए आते हैं)

राव०—इसीलिये तो मैंने अपने इलाक़े का प्रबंध आदर्श कर दिया है, और इसीलिये तो मैंने बहुत-से सुधार कर दिए हैं। अर्थात् किस लिये? और सुधार भी कैसे? लीजिए पहला सुधार—कोई आदमी मेरे राज में जूता न पहन सके; क्योंकि मैं भी जूता पहनता हूँ, वे भी जूता पहनेंगे, तो क्या वे मेरे बराबर हैं? दूसरा सुधार—कोई भी मेरे राज में धूप अथवा बरसात में छतरी न लगा सके; क्योंकि हम छतरी लगावें, तो फिर सब दुनिया क्यों लगावे? क्या सब दुनिया हमारी बराबरी करेगी?



पृथ्वीराज—···अच्छा, सोती रह। इस भरत-खंड से जब तक क्षत्रिय-जाति का नाम-निशान न मिट जाय, तब तक सोती रह। अगर नींद में या सपने में कभी चलने की इच्छा हो, तो घरवालों ही पर चल। हमें मिटा दे—भवानी! हम इसी लायक़ हैं।

तीसरा सुधार—मेरे राज में कोई गाड़ी-घोड़ा न रखने पाए, और अगर रक्खे, तो घोड़े की पूँछ में बाँधकर घिसटवा दिया ज़ाय। चौथा सुधार—अगर मेरे कुनबे में एक मच्छड़ की मौत हो जाय, तो सारा इलाक़ा-का-इलाक़ा अपना सिर और मूँछें मुड़ावे। सरदारी यों होती है; प्रबंध इसको कहते हैं। (एक माली का आना और गुलदस्ता भेंट करना, माली से) तू यह अच्छा ले आया। देख, इसमें जो फूल हैं, उनमें रूप, रस, गंध, इतनी चीज़ें हैं। समझता है? ये रूप, रस, गंध नाम की जो चीज़ें हैं, सो इंद्रियों को लुभानेवाली हैं। इन्हीं की बदौलत ब्रह्म को जीव-संज्ञा प्राप्त होती है, यह बात तू बेचारा क्या समझे, जब कि बड़े-बड़े ज्ञानी इन बातों में गोते खाने लगते हैं, बल्कि खा जाते हैं! जैसे फूल में काँटा है, वैसे ही सुख के साथ दुःख लगा हुआ है। आज यह खिल रहा है, कल मुरझा जायगा। इसी तरह मनुष्य का भी हाल होता है। देख—

माली—(हाथ जोड़कर) हाँ अन्नदाताजी!

राव०—जैसे तू पौधों को लगाकर बढ़ाता है न, वैसे ही परमात्मा इस अखिल ब्रह्मांड को चला रहा है।

माली—(गिड़गिड़ाकर) का जानी सरकार, चलावत होई। रामधई हम तो देखा नाहिं ना।

राव०—तू सिड़ी है। वह कहीं देखा भी जा सकता है? यह तुझे किसने बतलाया? उसका तो केवल अनुभव किया जा

सकता है। तर्क से उसका अस्तित्व सिद्ध होता है। योगी लोग उसे देख भी सकते हैं। बोल, क्या कहता है?

माली—मैं का जानूँ सरकार? हजूर का गुलाम हूँ।

राव०—वैसे तो सब एक ही हैं, और कोई किसी का गुलाम नहीं, किंतु लौकिक दृष्टि से 'मैं तेरा गुलाम हूँ और तू मेरा मालिक', यह बात अकेली गीता में ही क्यों, उपनिषद् लेकर देख, सब जगह यही लिखी पड़ी है। बोल, क्या चाहता है?

माली—(कुछ न समझकर) आपकी परबस्ती चाहिए महाराज।

राव०—(आप-ही-आप) मैंने इसे इतना वेदांत समझाया, पर इस कंबख़्त ने माँगना न छोड़ा। (माली से) आशा में ही दुःख है; तू आशा करता है, इसलिये दुखी है। इसके प्रमाण में (एक जेब में हाथ डालकर उसको उलटते हुए) देख ले; इसमें कुछ भी नहीं है। हमारा इरादा था कि इस गुलदस्ते के बदले में तुझे कम-से-कम एक मोहर देते, किंतु (दूसरे जेब में हाथ डालते हुए) इस समय (निकालते हुए) यह आधा डबल पड़ा है; इसी को ले और संतोष कर; (देता है, माली हाथ बढ़ाकर लेता हुआ अचरज के साथ राव की तरफ़ देखता है) क्योंकि संतोष के बराबर कोई धन नहीं—'जब आयौ संतोष-धन, (तौ) सब धन धूरि समान'—और ग़रीबों को तो इस धन की बहुत ही आवश्यकता है; इसीलिये उनको मैं ऐसी शिक्षा दिया करता हूँ। और दूसरे, ताँबे और सोने में कोई ऐसा भेद नहीं। ताँबा सोने से मोल

लिया जा सकता है, और सोना ताँबे से। यही नहीं, ताँबे से सोना बन भी जाता है, इसलिये तू इस पैसे को सोना ही समझ। न हो, तो इसका सोना बाज़ार में ख़रीद लीजियो, या किसी रसायनवाले से बनवा लीजियो।

माली—(गिड़गिड़ाकर) ए सरकार—

राव०—हम तेरा मतलब समझ गए। अच्छा तो सुन—इस उपवन में जो नियम टँगे हुए हैं, उनमें लिखा हुआ है कि किसी भी कर्मचारी को इनाम न दिया जाय, पर तूने हमसे इनाम ले लिया है। जैसा ताँबे का पैसा लिया, वैसा चाँदी का रुपया लिया। इसलिये ख़ैर मना और ईश्वर को धन्यवाद दे कि हम तेरी रपट नहीं कर रहे हैं। जानता है, रानी दुर्गावती का राज है। इसमें नियम तोड़ना तो क्या, न तोड़ना भी अपने ऊपर आफ़त लेना है। (फटकारते हुए) जा, भाग जा। (माली जाता है; गुलदस्ते को ध्यान से देखता हुआ) रानी के शासन की प्रशंसा-सरीखी इसकी सुगंधि दूर ही से अच्छी लगती है; इसका रूप हमारे देश-जैसा सुंदर है; इसके काँटे क़ानून की धारा से भी पैने हैं; इसकी पत्तियाँ मुक़दमों की मिसलों-जैसी हैं; इसका डंठल वृथा-पुष्ट वकील की तरह दिखाई देता है।

(सुमेरसिंह का प्रवेश)

सुमेर०—कहिए रावजी, किस सोच में हैं आप?

फूल को लेकर रहे हैं फूल क्यों ?

मन के झूले पर रहे हैं झूल क्यों ?

राव०—आओ सेनापति, तुम अच्छे इधर आ निकले। मन के झूले की बात को अब भूल जाओ। हमें तुमसे कुछ काम की बातें करनी हैं, उनको सुनने के लिये तैयार हो जाओ।

सुमेर०—सुनाइए।

राव०—क्यों भाई, हमारे कहने का मतलब यह है कि हमारा इलाक़ा जब महाराज दलपतिशाहजी ने जीता था, तब हमसे कह दिया गया था कि तुम्हें किसी तरह का कष्ट न दिया जायगा; पर अब हमसे हर साल 'कर' लिया जाता है। और यदि देने में कुछ देर होती है, तो हमको यहाँ बुलाया जाता है। महीनों बाद महारानीजी के सामने पेशी होती है, तब कहीं छुटकारा होता है। ये सब तकलीफ़ नहीं तो क्या आराम की सूरतें हैं ? मैं तुमसे पूछता हूँ, तुम्हीं कहो।

सुमेर०—किंतु यह कुछ कम संतोष की बात नहीं है कि महारानीजी आपको बार-बार क्षमा कर देती हैं। आप पर उनकी विशेष कृपा है, इसमें संदेह नहीं।

राव०—लेकिन कुछ सोचो भी तो—

भला बेफ़ायदे मुझको सताते हैं बुलाते हैं;

मुझे तकलीफ़ देते हैं औ' ख़ुद तकलीफ़ पाते हैं।

सुमेर०—(हँसकर) आपकी दलीलों से ही डरकर महारानीजी आपको क्षमा कर दिया करती हैं।

राव०—हाँ, तो यों सही। मैं उनकी तलवार से डरता हूँ, वे मेरी दलील से डरते हैं। बस, हुआ।

सुमेर०—अब तो यह खबर उड़ रही है कि महारानीजी आपके इलाक़े का प्रबंध अपने ही हाथ में लेना चाहती हैं, और आपको आराम से यहीं रखना चाहती हैं।

राव०—सेनापति, देखो, (अपने दोनो कान दिखाता हुआ) एक और यह दो; मेरे भी दो कान हैं, और मैं भी इन सब बातों को सुन सकता हूँ, और सुनता रहता भी हूँ। पर मैं यह पूछता हूँ, क्या मैंने अपने इलाक़े में कोई सुधार ही नहीं किए हैं?

सुमेर०—उन 'सुधारों' की खबर महारानी को पड़ गई है। रसद, बेगार, नज़राना और न-जाने कौन-कौन-से 'बिगाड़' करके आपने उनका नाम सुधार रख छोड़ा है! आपने प्रजा के दुःख को सीमा से परली तरफ़ पहुँचा दिया है। आपके इलाक़े में आत्महत्याएँ और ख़ून भी बहुत होते हैं।

राव०—वाह सेनापति वाह! यह तुमने ख़ूब कही। अरे भाई, जहाँ ख़ून बहुत होगा, वहीं तो बहुत ख़ून होगा। मेरे इलाक़े को कोई तपेदिक़ या क्षयी की बीमारी थोड़े ही है, जो उसमें ख़ून न हो। रही आत्महत्या की, सो यह बात सरासर झूठ है; मेरे ऊपर झूठा दोष लगाया जा रहा है; क्योंकि आत्म-हत्या नहीं होती, और न हो सकती है। गीता में कहा है कि—

नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि नैनं दहति पावकः;

न चैनं क्लेदयन्त्यापो न शोषयति मारुतः।

हाँ, यह अवश्य होता होगा कि कुछ मूर्ख इस नाशवान् देह से उकताकर इसको उसी प्रकार छोड़ जाते हों, जिस प्रकार कोई पुराने कपड़ों को फेंक देता है, जैसा कि गीता में भी कहा है। किंतु यदि यह कुछ दोष है भी, तो भी इसके लिये मैं उत्तरदाता नहीं। इसका कारण यह है कि मेरे यहाँ ज्ञान-चर्चा अधिक होती रहती है। इसलिये लोग अपने शरीर का मोह त्याग बैठे हैं। भला तुम्हीं सोचो कि मेरा इसमें क्या दोष है ?

सुमेर०—आपके विषय में यह भी कहा जाता है कि आप अपने कर्मचारियों से प्रजा को बहुत दुःख दिलाते हैं।

राव०—(सकपकाकर) सेनापति, जल्दी न करो, यह मन और इंद्रियों को वश में करने का सवाल है—

सुमेर०—भला आपने अपनी फ़ौज क्यों तोड़ दी ? अगर कभी आवश्यकता हुई, तो आप किस प्रकार महारानी की सेवा और सहायता करेंगे ?

राव०—यह जान हाज़िर है। सच पूछो तो इन फ़ौजवालों ने ही दुनिया-भर में आफ़त मचा रक्खी है। आज तुम अपनी फ़ौज तोड़ दो ; फिर देखो कि किसी को तुमसे लड़ने की आवश्यकता ही न पड़ेगी। और अगर कभी कोई कंबख़्त तुम पर चढ़ भी आया, तो भी तुम उससे न लड़ोगे—क्योंकि एक हाथ से ताली नहीं बजती—और वह दुष्ट अपना-सा मुँह लेकर रह जायगा—नहीं,—लौट जायगा। इस तरह अनगिनती आदमी

बेमौत मारे जाने से बचेंगे, और तुम अक्षय पुण्य के भागी होगे। हिंसा करना सदा बुरा है।

सुमेर०—अगर हिंसा न की जाय, तो देश की रक्षा कैसे हो रावजी? आपका खयाल किधर है? देखिए, सारा संसार सदा से हिंसामय रहता आया है, और रहेगा। योगी लोग अपनी प्रवृत्तियों की हिंसा करके शांति-लाभ करते हैं, हम अपने शत्रुओं का नाश करके देश में शांति-स्थापन करते हैं। समाधि में शरीर छोड़ने से और लड़ाई में मारे जाने से एक ही पद मिलता है। मालूम है कुछ आपको?

राव०—अपक्व योगवाले को चाहिए कि संग-दोष से बचे।

सुमेर०—(हँसकर) तो आप बचे रहिए। (जाने लगता है)

राव०—सुनो तो, सुनो तो—

सुमेर०—अब मैं आपके थोथे वेदांत के लेक्चर सुनूँ या फ़ौज को कवायद कराने जाऊँ?

राव०—कुछ परवा नहीं, फ़ौज को कवायद कराओ, या तुम खुद कवायद करो, तुम्हारी खुशी है। चलो, मैं भी तो तनिक तुम्हारी रणबाँकुरी सेना देखूँ।

सुमेर०—आइए—

(जाते हैं)

तीसरा दृश्य

स्थान—रानी दुर्गावती के महल में एक कमरा

(मंत्री अधारसिंह से रानी बातचीत कर रही हैं; शरीर-रक्षिकाएँ रानी के इधर-उधर खड़ी हैं)

रानी—नहीं, मंत्री, यह न समझो कि अकबर की चालों से मैं बेख़बर हूँ। वह एक आँधी है, जो अभी हमसे दूर है, और जो दूर से देखनेवालों को बुरी दिखलाई नहीं देती; पर मैं पूछती हूँ, उसको यहाँ तक आ पहुँचने में कितनी देर लग सकती है? किंतु मंत्री, हमारे सामंत और सरदार ऐसे कुछ असंतुष्ट नहीं हैं, यही क्या कुछ कम संतोष की बात है? जब तक किसी देश में विश्वासघाती नहीं होते, तब तक उस देश की स्वतंत्रता पर कहीं से कोई वार नहीं हो सकता—

लोहा अकेला पेड़ को कब काट सकता है भला,
जब तक कि लकड़ी का हथेला हो नहीं उसमें सला।

मंत्री—महारानीजी, सच है। वैसे तो कोई भी सामंत या सरदार असंतुष्ट नहीं दिखलाई देता, परंतु समय पड़ने पर ही शत्रु और मित्र की परख होती है। हमें किसी के हृदय का हाल क्या मालूम?

जो आज अपने हैं, वही, संभव है, कल जावें बदल,
है नाचती बंदर-सी दुनिया लोभ औ' लालच के बल।

रानी—किंतु मंत्री, हमारी प्रजा को तो देखो; सब तरह से

सुखी है, और हमारे प्रबंध से संतुष्ट है। फिर यदि एकाध सरदार असंतुष्ट भी हो तो क्या।

जब तक हमारे प्रति प्रजा में भाव अच्छा है बना,

तब तक अकेला भाड़ को कब फोड़ सकता है चना ?

मंत्री, हमारे जो सरदार अपनी प्रजा को कष्ट देते हैं, उनको सीधे मार्ग पर लाना हमारा धर्म है—

जो हम न पालें धर्म, तो फैले अराजकता अभी,

हो नष्ट सारा राज, सारी शांति, धन आदिक सभी।

पर जब हमने राज-रूपी उद्यान के कंटक-रूपी सरदारों को दूर या भौंतरा कर दिया है, तब भी क्या कहीं से धोखे का भय है?

मंत्री—महारानीजी, आपके विमल यश के सूर्य ने चारों ओर उल्लुओं को भगा दिया है, यह सच है; किंतु मेरे विचार में अभी एकाध सरदार और भी इस योग्य हैं कि उनकी जागीर राज में मिला ली जाय, और उन्हें यहीं क़िले में रहने दिया जाय। क्योंकि—

हो फँसा व्यसनों में जो, वह वीर है किस काम का ?

जंग जिसको खा चुका, वह शस्त्र है बस नाम का।

रानी—तुम्हारा संकेत किसकी ओर है?

मंत्री—राव गिड़धाड़ीसिंह।

रानी—हाँ, मैं सब जानती हूँ, और सब सुन चुकी हूँ। इसके विषय में तुम पहले भी कह चुके हो। ऊपर से वेदांत की

बातें मारनेवाला यह सरदार पूरा गोबरगनेस है। देखो, किस प्रकार इसने अपनी प्रजा का नाक में दम करके अपने इलाक़े को अंधेर-नगरी बना रक्खा है! तुम्हारे कहने से वह बुलवाया गया था, और आ भी गया है। अभी तुम्हारे सामने ही उसका फ़ैसला कर दिया जायगा। (चोबदार का प्रवेश)

चोबदार—(प्रमाण करके) श्रीमहारानीजी, आगरे से एक दूत आया है।

रानी—(मंत्री की ओर देखकर उँगली से ऊपर को संकेत करती हुई)

आ चली आँधी इधर, यह चील मंडराने लगी,
बादलों की-सी गरज कुछ कान में आने लगी।

(चोबदार से) जाओ, उसे सम्मान-पूर्वक ले आओ।

(चोबदार का प्रस्थान और दूत के साथ पुनः प्रवेश; दूत का सलाम करके मंत्री को पत्र देना)

रानी—(दूत से) दूतवर, कहो, तुम्हारे शाह अच्छे तो हैं?

दूत—आपके तुफ़ैल से।

रानी—प्रसन्नता की बात है। (चोबदार से) जाओ, इनको आदर के साथ ठहराओ। (दोनो गए)

मंत्री—(पत्र खोलता हुआ)

कर दिया शेरों को गीदड़ फाँस अपने जाल में,
आ गए रजपूत सब इस बाजीगर की चाल में।

(पत्र खोलकर सुनाता है)

'गढ़मंडले की अधीश्वरी श्रीमहारानी दुर्गावतीदेवीजी

अकबर का प्रणाम। भगवान् की कृपा से यहाँ सब तरह अमन-चैन है। आशा है, आपके यहाँ भी सब तरह आनंद होगा। इस समय काबुल को सर करने की जो तरकीब मैंने सोची है, उसके बारे में सलाह करने के लिये मुझे आपके मंत्री श्रीअधार-सिंहजी की ज़रूरत है। मंत्री महोदय केवल एक महीने मेरी मेहमानी स्वीकार करें तो सब काम हो सकता है। भगवान् की दया से चतुर मंत्रियों की मेरे यहाँ भी कमी नहीं है, लेकिन मेरे सब मंत्रियों ने मुझे यही सलाह दी है कि अधारसिंहजी की राय इस मामले में और ले ली जाय, क्योंकि इन बातों का तजुर्बा रखनेवाला इस समय उनसे बढ़कर दूसरा कोई भी शख़्श हिंदुस्तान में नहीं है। मैं आपका ही एक भाई और आपके राज का शुभचिंतक हूँ। अगर मेरे लायक़ कोई सेवा हो, तो सदा तन, मन, धन से तैयार हूँ। मुझे पूरी शरीर आपके आप अधारसिंहजी को कुछ दिनो के लिए भेजकर सहायता भी, यता करने की कृपा करेंगी।

आपका भाई—

अकबर'

रानी—(अकबर को संकेत करके)

अरे धूर्त वाचाल, ख़ूब जानती हूँ तुझे,

जिस पर फेंका जाल, कब तूने छोड़ा उसे !

(सोचकर मंत्री से) मंत्री तुम्हारी क्या राय है ?

मंत्री—महारानीजी,

भीतर भरा हलाहल, है दूध जिसके मुँह पर,
धोखे से मारता है, ऐसा घड़ा है अकबर।

रानी—मंत्री, मैं सब समझती हूँ। तुमको इस बहाने यहाँ से निकालकर यह हम पर हमला करना चाहता है, और बहुत दिनों से इसी के लिये तैयारी कर रहा है। आसफ़ख़ाँ हमसे हारकर खिसिया गया है; वह इसे और भी भड़का रहा है। मेरी राय में तुम्हारा वहाँ जाना ठीक नहीं।

मंत्री—न जाने से—

रानी—(बात काटकर) जानती हूँ, न जाने से एकदम युद्ध छिड़ेगा, किंतु वह तो वैसे भी रुकनेवाला नहीं।

क्षत्रिय-बाला हूँ मैं, मंत्री, नहीं युद्ध से डरती हूँ;
अकबर के विरुद्ध मैं ख़ुद ही युद्ध-घोषणा करती हूँ।

बस !

मंत्री—(हाथ जोड़कर) महारानीजी, उत्तेजित न हूजिए।

आज तक जल को नहीं मारा किसी ने आग से,
हम तो छल-बल से लड़ेंगे इस विषैले नाग से।

रानी—क्या तुम समझते हो कि वह लड़ाई में हमसे जीत जायगा ?

मंत्री—कभी नहीं। लेकिन महारानीजी, विश्वास रखिए, वहाँ मेरे जाने से आपका लाभ ही होगा। ऊपर से जैसा वह जल की तरह शांत बना हुआ है वैसे ही हम भी क्यों न बने रहें ?

रानी—मंत्री, कैसी उलटी बातें करते हो ? तुम इस राज-

रथ के पहिए हो, नीति-पथ के दीपक हो, तुमको शत्रु के हाथों में देना जान-बूझकर हार मोल लेना है।

मंत्री—क्या मेरी तरह आपको भी शंका है कि वह मुझे क़ैद कर लेगा ?

रानी—हाँ,

छोड़ता है करके कब निज वश में चूहे को विलाव,
जो भँवर में जा पड़ो, तो कब भला बचती है नाव ?

मंत्री—यह न सोचिए। जैसे हनूमान्‌जी ने राक्षसों के बीच में जाकर सीताजी का पता लगाया था, वैसे ही मैं भी वहाँ जाकर उसकी नीति का पता लगाऊँगा, और चाहे वे मुझे सात तालों में बंद करें, किंतु अगर जीता रहा, तो अवश्य लौटकर आऊँगा।

रानी—यह बात मेरी समझ में नहीं आती।

मंत्री—(हाथ जोड़कर) श्रीमहारानीजी, यह शरीर आपके ही दिए हुए अन्न-जल से पुष्ट हुआ है, और यदि जायगा भी, तो यह आप ही की सेवा में जायगा।

रानी—ठीक है, परंतु मैं नहीं चाहती कि यह जाय। देखो मंत्री, अकबर छल, बल और कौशल से तुमको वश में करने की पूरी चेष्टा करेगा।

मंत्री—हाँ ठीक है, किंतु महारानीजी, जो किसी लालच या लोभ के वश होकर अपने स्वामी से विश्वासघात करते हैं, वे कुत्ते से भी गए-बीते हैं, क्योंकि कुत्ता कभी स्वामी के साथ विश्वासघात नहीं करता।

रानी—मैंने माना कि तुम उसके जाल में न फँसोगे, किंतु फिर भी तुमको वहाँ भेज देना मेरे लिये ऐसा ही है जैसे लड़ाई में अपनी तलवार अपने शत्रु के हाथ में देकर आप निहत्थे रह जाना।

मंत्री—महारानीजी, जो तलवार शत्रु का ही गला काटकर मंत्र के ज़ोर से फिर लौट आवे, उसको शत्रु के हाथ में देने में हानि नहीं—लाभ ही है। यह चिट्ठी कोई साधारण चिट्ठी नहीं है। मेरी बुद्धि यह कहती है कि महारानीजी, आज से तीसरे महीने आपको मुगलों और देश-द्रोही राजपूतों की सेना से लोहा लेना पड़ेगा। और, जिस समय यह नौबत आवेगी, उस समय यह दास आपके चरणों के पास होगा, न कि आगरे के क़िले में क़ैद।

रानी—(सोचती हुई) तो मंत्री, क्या तुम जाना ही ठीक समझते हो?

मंत्री—जी हाँ—(चोबदार का प्रवेश)

चोब०—श्रीमहारानीजी, राव गिड़धाड़ीसिंहजी आए हैं।

(रानी का मंत्री की तरफ़ देखना)

मंत्री—महारानीजी, बुलवा लीजिए, क्या हानि है।

रानी—(चोबदार से) भेज दो।

(राव गिड़धाड़ीसिंह का आकर प्रणाम करना; रानी का लापरवाही से सिर हिला देना)

राव०—(हाथ जोड़कर) आज तो श्रीमहारानीजी का शरीर

चिंतित-सा दिखाई देता है। कहीं इस दास से तो कोई अपराध नहीं बन पड़ा? क्योंकि कहा है कि—

शोक, हर्ष, भय, क्रोध, मोह, ये अहंकार के हैं सब धर्म;

(मंत्री की ओर)

जीवात्मा तो परमात्मा है, चलो उसी का ढूँढ़ो मर्म।

रानी—रावजी, पधारिए। कहिए, आपकी प्रजा आप से संतुष्ट तो है?

राव०—महारानीजी, कहीं प्रजा भला हमसे संतुष्ट रह सकती है? (मंत्री की ओर) लो, पूछो? (रानी की ओर) प्रजा तो यह चाहती है कि वह हमारी राजा बन जाय। ऐसा भी कहीं हो सकता है? पर हाँ, एक बात याद आई, कहा है—'यथा राजा तथा प्रजा।' इसलिये हम राजा हैं, तो हमारी प्रजा भी हमारी देखा-देखी राजा ही बनना चाहती है। फिर उसे दूसरा कोई इस काम के लिये नहीं मिलता, इसलिये वह हमारी ही राजा बन बैठना चाहती है!

रानी—रावजी, प्रजा आपकी राजा नहीं, आपकी संतान है, किंतु आप उसके साथ ऐसा व्यवहार करते हैं कि जैसा पशु के साथ भी नहीं किया जाना चाहिए। आपने आज्ञा निकाली है कि कोई जूता न पहने, छाता न लगावे; क्या आपके ही पैर हैं, दूसरे के नहीं? क्या आपको ही छाते विना कष्ट होता है, दूसरों को नहीं? रावजी, प्रजा के साथ ऐसा व्यवहार करके आपने अपने सारे वेदांत को बकवाद में परिणत कर रक्खा है।

राव०—(आप-ही-आप) नाराज़ किसी और से हुई बैठी हैं, ग़ुस्सा उतार रही हैं मुझ पर।

रानी—हमने छः बार आपको चेतावनी दी, परंतु फिर भी आप अपना सुधार न कर सके।

राव०—(आप-ही-आप) अरे मरें ये सुधार और ऊपर से सुधार-वाला मैं।

रानी—(एक बड़ा-सा काग़ज़ निकालकर) फिर सरदार लोग कहते हैं कि रानी तंग करती है ! अब, आपकी प्रजा की ओर से यह प्रार्थना-पत्र आया है, जिसमें आपके अत्याचारों से तंग आकर मुझसे यह प्रार्थना की गई है कि मैं आपकी जागीर अपने राज में मिला लूँ।

राव०—(सटपटाते हुए) मुझको तो इसकी कुछ भी ख़बर नहीं है।

रानी—ख़बर कैसे हो ? तरह-तरह से दंड का भय दिखा-कर प्रजा का मुँह बंद करनेवाले आप उलटी यह शिकायत करें कि हमें कुछ भी ख़बर नहीं ! कैसे अचरज की बात है !

राव०—प्रजा झूठी है।

रानी—ठीक है, आप ही सच्चे सही। किंतु जाइए, इस प्रार्थना-पत्र में जो बातें लिखी हैं, उनका उत्तर सात दिन में मुझे दीजिए। तब तक यहीं रहिए, और हमारा आतिथ्य स्वीकार कीजिए।

राव०—(आप-ही-आप) यह डुक मार-मारकर ख़ूब आतिथ्य

स्वीकार कराया जा रहा है! (प्रकट) बहुत अच्छा, जो आज्ञा।

रानी—(मंत्री से) अच्छा मंत्री, जाओ और देखो, राव साहब की सेवा में किसी प्रकार की कमी न हो। उस बात को भी और सोच-समझ लो (खड़ी होकर) रावजी, आप भी इसका उत्तर सोच-समझकर दीजिएगा।

(प्रणाम करके मंत्री का एक ओर जाना; रानी का भी दूसरी ओर जाना)

राव०—(प्रार्थना-पत्र पढ़कर तरह-तरह के मुँह बनाते हुए घूँसा ऊपर को उठाकर) हे पाँच तत्त्वो, इस प्रार्थना-पत्र में जो बातें हैं, वे भले ही सच हों, पर हम राजा हैं, प्रजा के पिता हैं, इसलिये प्रजा-रूपी संतान के कान मलने का हमें पूरा अधिकार है। इसके लिये यदि हमारी जागीर छिनी, तो यह क्षत्री का बालक वही करेगा जो पुराने समय में विभीषण नाम के बाभन ने किया था, अर्थात् अकबर को चढ़ा लावेगा, और खुद ही इस राज का राजा बन बैठेगा। (जाते-जाते फिर लौटकर) जिस काम से ब्राह्मण नहीं चूके, उससे हम क्यों चूकें? (जाते-जाते फिर लौटकर) हम तो कहते हैं, चलो कौन भी बोले, कौन भी बोले।

(गया)

चौथा दृश्य

(अपनी उम्र के छोटे-छोटे बालकों के साथ तीर, कमान, तलवार आदि से सुसज्जित वीरनारायण आता है। बच्चे एक मरे हुए शेर को घसीटकर लाते हैं, जिसके शरीर में जगह-ज़गह तीर छिदे हुए हैं)

एक बालक—राजकुमार भैया, इतना बड़ा सेर तुम्हारे छोटे-से तीर से कैसे मर गया ?

वीर०—यह तीर विष का बुझा है।

दूसरा—'विष का बुझा' क्या ?

वीर०—इस पर ज़हर का पानी चढ़ा है।

तीसरा—(तीर को ध्यान से देखता हुआ) इस पै तो पानी-वानी कहीं दीखता नहीं, हाँ, लहू के दाग़ कितने ही लग रहे हैं।

पहला—क्या हमारे तीर भी ऐसे ही नहीं हैं ?

वीर०—मुझे क्या मालूम ?

दूसरा—क्या तुम्हारी तलवार भी ऐसी ही है—बुझी ?

वीर०—नहीं, पर हमारे शस्त्रागार में विष से बुझे बहुत-से हथियार रक्खे हैं।

तीसरा—तो उनमें से कुछ हमें दे दो।

पहला—(सोचता हुआ) बुझी हुई एक ढाल हो, तो मुझे दे दो।

वीर०—कहीं ढाल भी विष की बुझी होती है ?

दूसरा—तुम महारानीजी से कहकर एक अच्छी-सी कटार हमें दिलवा दो—

वीर०—हाँ, अच्छा चलो; मैं माताजी से कह दूँगा कि यह शेर तुम्हीं ने मारा है।

तीसरा—यह तो हमने नहीं मारा, तुमने मारा है।

वीर०—तुम्हारे भी तो तीर इसके लगे हैं।

पहला—पर मरा तो तुम्हारे ही तीर से है।

वीर०—हमारे तीर से काहे को मरा, सबने मिलकर मारा है।

दूसरा—और घायल होकर जब इसने हमला किया, तो तलवार किसने मारी थी?

वीर०—तलवार मैंने मारी थी तो क्या हुआ; अकेली तलवार से थोड़े ही मरा है!

तीसरा—अच्छा तो चलो, इसे घसीटकर एक ओर रख दें, और दूसरे शेर की खोज करें। और अबकी बार तीरों से नहीं, तलवारों से ही सब कोई मारो।

सब—हाँ, चलो, चलें।

(एक ओर सिंह को घसीटते हुए सबका जाना; दूसरी ओर से अकबर के दूत का आना)

दूत—इस राज का इंतज़ाम देखकर मुझे अचरज हो रहा है। यहाँ के बच्चे और बूढ़े, सभी में बहादुरी, निडरपन और आज़ादी कूट-कूटकर भरी है! जैसी हमारे यहाँ रैयत सुखी है वैसी ही यहाँ भी है; जैसे हमारे यहाँ इंसाफ़ के सामने ऊँच-नीच, हिंदू-मुसलमान का विचार नहीं किया जाता, उसी तरह यहाँ भी नहीं किया जाता। सच पूछो तो यहाँ सतजुग ही बरत रहा है।

रावजी—(आते हुए) हम कहते हैं कि तनिक भी नहीं बरत रहा है।

दूत—(अचरज के साथ) आप कौन हैं?

राव०—हम भी एक चट्टान हैं, जो अभी तक तो किनारे पर पड़े थे, अब चकनाचूर होने के लिये धारा में लुढ़क आए हैं। हम फल हैं—पके हुए फल—जो अब तक तो पत्तों में छिपे थे, पर अब लोगों का भोज्य या भोजन—क्या कहें! मतलब यह कि बाहर से दिखलाई पड़ने लगे हैं, जिसमें निर्दोष होने पर भी खा डाले जायँ। हम हैं राव गिड़धाड़ीसिंघजी। तुम बेचारे नए आदमी हो, तुमको यहाँ का क्या पता? दो दिन अच्छे-अच्छे भोजन करके यहाँ की तारीफ़ करने लगे! यहाँ के दुःख हमसे पूछो, हमसे। याद रक्खो, जिस राज का राजा समदर्शी होता है, उस राज में घोर अनर्थ, अत्याचार और अन्याय हुआ करता है।

दूत—किस तरह?

राव०—बड़े बड़े ही हैं, छोटे छोटे ही हैं। यदि करेले और आम को समान अधिकार देने होते, तो भगवान् उन्हें एक ही डाल में उगाता, और क्यों एक को कड़ुआ और दूसरे को मीठा या खट्टा बनाता? और हम पूछते हैं कि क्यों किसी को सुंदर और किसी को काना-खुतरा बनाता? नहीं; जीवात्मा जब एक शरीर को छोड़कर दूसरे में जाता है, तब पूर्व-संचित संस्कारों को साथ लेकर जाता है; तुम्हें अभी यही नहीं मालूम।

दूत—मैं आपका मतलब ज़रा भी नहीं समझा; माफ़ कीजिए।

राव०—सबकी बुद्धि एक-सी नहीं होती। इसलिये इसमें

तुम्हारा कोई दोष नहीं। पर अब देखो, मेरी बात सुनो। मैं एकांत में तुमसे मिलने की चिंता में था, सो यह अच्छा अवसर मिल गया। (जेब में से एक बंद चिट्ठी निकालता हुआ) यह एक चिट्ठी है, जिसे तुम शाहंशाह अकबर को दे दोगे। इसमें कुछ उनके काम की बातें हैं। वैसे तो हमने इसमें लिख दिया है, पर फिर भी अगर वे पूछें, तो कह देना कि राव गिड़धाड़ी-सिंघजी ने दी है। समझ गए?

दूत—(अकचकाकर) लेकिन मुझसे जिस ख़त के जवाब के लिये कहा गया था, उसका जवाब मुझे मिल गया, अब यह दूसरा मैं क्या लूँ?

राव०—तुम समझते नहीं, हम समझते हैं। यही तो ऊँच-नीच का भेद है और भेद क्या पत्थर है? इस चिट्ठी को पढ़कर शाहंशाह न-जाने तुम्हें क्या इनाम दे डालेंगे। जाओ, ख़ैर मनाओ। लो!

(सुमेरसिंह का आना और इन दोनों को देखकर छिपकर खड़ा हो जाना)

दूत—(राव को आधा पागल समझता हुआ आप-ही-आप) इस पागल से जल्दी पीछा छुड़ाना चाहिए। (प्रकट) अच्छा, अगर ऐसा है तो लाइए।

(लेकर जाता है)

सुमेर०—(सामने आकर) कहिए रावजी, यह आपने अभी इस दूत को क्या दिया?

राव०—(सकपकाकर, बड़ी मुश्किल से अपने को संभालते हुए)

दिया क्या, बेचारे की चिट्ठी गिर पड़ी थी, सो हमने उठा दी। आप लोग तो हमारी हरएक बात पर संदेह करते फिरते हैं! खूब!

सुमेर०—संदेह की बात नहीं है रावजी! मैं आपसे यह पूछता हूँ कि क्या वह चिट्ठी इतनी भारी थी कि उस आदमी से उठ नहीं सकती थी?

राव०—शायद....

सुमेर०—(हँसकर) गर्भवती होगी?

राव०—(झुँझलाकर) मुझे क्या ख़बर! मैं क्या कोई हर-एक के पेट में घुसता फिरता हूँ? खूब! मैं हरएक बात की ख़बर कहाँ तक रक्खूँ, सेनापतिजी?

नाक में दम है मेरा, आया हूँ जबसे मैं यहाँ;
खाए जाते हैं मुझे सब कोई मिलकर ख़ाम-ख़ाँ।

(सुमेरसिंह की ओर पीठ फेरकर और फिर उसकी ओर मुह करके) और हरएक प्रश्न का उत्तर कहाँ तक दूँ?

सुमेर०—ठीक है, आप हरएक प्रश्न का उत्तर क्यों देंगे, आप क्या कोई उत्तर-कांड हैं? पर हाँ एक बात निश्चित है कि अकबर से आप चुपचाप लिखा-पढ़ी कीजिए, और फिर देखिए कि उसके दरबार में आपको कैसी अच्छी नौकरी मिलती है! वहाँ बीरबल और मुल्ला दो प्याज़े के बराबर बैठने पर आपका क्षत्रियपन और भी चमक जायगा।

राव०—(झुँझलाकर) इन बातों से लाभ क्या? मैंने तो

तुमसे कुछ कहा नहीं है। सेनापति, क्या तुम भी मेरे विरुद्ध हो?

सुमेर०—मैं आपके नहीं आपकी करतूतों के विरुद्ध हूँ।

जो हत्यारी हो न सिंह की जाति;

तो सब पालें उसे गाय की भाँति।

राव०—मैंने कौन-सा बुरा काम किया है? किसकी हत्या कर डाली है?

सुमेर०—आपने बुरा काम किया है, देश-द्रोह; तथा हत्या कर डाली है मनुष्यत्व की, और फिर भी आप पूछते हैं कि मैंने किसकी जान मारी है! शोक!

मिल रहे हैं शत्रु से, औ' पूछते हैं क्या किया?

भीतरी कैंची चलाकर कहते हैं कपड़ा सिया!

घबड़ाइए मत—

इसका नतीजा आपको अब शीघ्र ही मिल जायगा;

जो है कली के रूप में, वह गुल अभी खिल जायगा।

राव०—(आपे से बाहर होकर) बहुत अच्छा, बहुत अच्छा; तुम भी मुझे समूचा ही निगल जाओ, हाँ, हाँ—

छीन लो जागीर मेरी, मार डालो तुम मुझे;

नोचकर सब लोग, बस, कच्चा ही खा लो तुम मुझे।

(इधर-उधर घूमकर सुमेरसिंह से)

किंतु-एक-न-एक दिन मिलता है फल निज कर्म का;

याद रक्खो, सत्य है यह वाक्य हिंदू-धर्म का।

सुमेर०—भगवान् करे, ऐसा ही हो—सबको अपने-अपने कर्मों का फल मिले। (गया)

राव०—हुँः, यह खूब रही ! क्या हम किसी से बोले ही नहीं? मान लो कि अकबर से हमारी पुरानी मित्रता है—फिर, क्या कर लोगे? बहुत करोगे, मेरी जागीर छिनवा दोगे। सो इसमें भी क्या कुछ संदेह है? यह तो आज या कल में होता दीख ही रहा है। पर मैं भी (ऊपर घूँसा उठाकर) अगर क्षत्रिय का बालक हूँ, तो इस सेनापति को सेनापति से और इसकी सेना को सेना से भिड़वा दूँगा। (जाते-जाते लौटकर) क्यों घबराते हो?

(जाने लगता है; दूसरी ओर से गेरुआ वस्त्र पहने हुए बदनसिंह का प्रवेश)

बदन०—रावजी, ठहरिए, ठहरिए।

राव०—(रुककर, पीछे देखकर, पहचानकर और चौंककर) अरे-अरे ! बदनसिंहजी ! आप कहाँ? आपका यह कैसा भेष !

बदन०—रावजी, जो आपत्ति आप पर अब आनेवाली है, वह, बल्कि उससे भी कहीं बढ़कर, मुझ पर पहले ही आ चुकी है, यह तो आप जानते ही हैं; इसलिये सच तो यह है कि हम और आप अब एक ही नाव पर सवार हैं, जो—

या भँवर को पार होगी या तले में जायगी;
या तो तट या पेट में मच्छों के यह पहुँचायगी।

राव०—किंतु आपको तो देश-निकाला—

बदन०—हाँ, तभी तो मैंने यह सूरत बनाई है। आपके ऊप भी जो कुछ बीत रही है, मैं सब जानता हूँ। सेनापति से जो

आपकी बातचीत अभी हुई है, उसमें से भी थोड़ी-सी मैंने छिपकर सुन ली है। अब मैं (सशंक दृष्टि से इधर-उधर देखकर) आपसे केवल यह कहता हूँ कि मैं तो जाऊँ अकबर के यहाँ, और नौकरी करूँ, और आप ऊपर से महारानी और उस बेईमान अधारसिंह की ख़ूब ख़ुशामद करते रहिए। इस समय, सर्वस्व छिन जाने पर भी, उत्तेजित न हूजिए; बल्कि नीति से काम लीजिए। लड़ाई छिड़े, तो बहुत-सी फ़ौज इकट्ठी करके महारानी की सहायता करने को तैयार हो जाइए, और ऐसा जँचाइए, मानो अपनी जागीर वापस मिलने की आशा से ही आप यह सब ख़ुशामद कर रहे हैं। हाँ, ख़ूब जोश से देश-भक्ति और स्वतंत्रता के गीत गाइए, और अंत में, जब समय आवे, तब महारानी से बदला चुकाइए, और इस दुष्ट मंत्री को हाथी के पैरों-तले कुचलवाइए। (पैर दे मारना)

ख़ूब ही आता है मिलकर घात करने में मज़ा;
हँसती है दुनिया कि जब मिलती है दुष्टों को सज़ा।

राव०—(ख़ुशी से) ठीक है। कहा है कि—

"यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति तदा तदा महात्मानं सृजाम्यहं परित्राणाय साधूनां विनाशाय दुष्कृतां।"

बदन०—और हाँ, यह तो बतलाइए, सेनापति आपसे और क्या कहता था?

राव०—अजी कुछ नहीं, वह अकबर का दूत बेचारा तनिक मार्ग में भटक गया था, सो मैं उसको सीधा मार्ग बतला रहा था।

बदन०—तब तो महारानी आप पर बहुत बिगड़ेंगी ?

राव०—मैंने उस बेचारे की ज़रा पोटली उठा दी, सेनापति समझे कि चिट्ठी दी !

बदन०—ख़ैर, जैसे भी हो सके, आप महारानी का संदेह अपने ऊपर बढ़ने न दीजिए; बल्कि मेरी तो यहाँ तक राय है कि छिनने से पहले ही आप स्वयं जाकर अपनी जागीर बड़ी श्रद्धा और भक्ति दिखाते हुए महारानी की भेंट कर दीजिए, और कह दीजिए कि मुझे राज नहीं करना, मैं तो यहीं आपके चरणों में रहकर और कुछ वेदांत-चर्चा करके बाक़ी आयु बिताना चाहता हूँ।

राव०—हाँ, है तो ठीक।

बदन०—वेदांतपन की आड़ में बड़े-बड़े काम हो सकते हैं। यह वह छूमंतर है, जिससे सारी दुनिया को चकमा दिया जा सकता है। आपने संसार-भर का शिकार करने के लिये वेदांत की टट्टी की आड़ अच्छी कर ली है।

(हँसता है)

राव०—यहाँ मेरा आपसे कुछ मतभेद है। यह बिलकुल सच है—अर्थात् वेदांत।

बदन०—माना, पर हम तो सच्चे नहीं; हम तो ऊपरी ढोंग दिखाते हैं !

राव०—यह ईश्वर से मिल जाने—एक हो जाने—का रास्ता है।

बदन०—किंतु इस रास्ते पर चलता कौन है? स्वयं चलने का बहाना किया जाता और दूसरों को इस पर चलने का उपदेश दिया जाता है।

राव०—इस पर चलने से मनुष्य स्वयं ईश्वर हो सकता है।

बदन०—लेकिन ईश्वर बनने का विचार करने से पहले वह 'मनुष्य' भी तो बन ले! अच्छा, जाने दीजिए। आप जीते, मैं हारा। चलिए, अब आप अपना काम कीजिए, और मुझे अपना रास्ता लेने दीजिए। (जाते-जाते) समाचार भेजते रहिएगा। (दोनों का जाना)

पाँचवाँ दृश्य

स्थान—अकबर का दरबारख़ासवाला कमरा

(अकबर, बीरबल, टोडरमल, मानसिंह, पृथ्वीराज और आसफ़ख़ाँ बैठे हैं। गाना हो रहा है, दो नर्तकियाँ नाच रही हैं)

(गाना)

अहा! कैसा रँगीला जुड़ा है समाज;
सभी मिल करके ख़ुशियाँ मनाते हैं आज।
एक—फूल रहे हैं बाग़ में रंग-बिरंगे फूल;
बँधे प्रेम की डोर में भौंरे सुधि-बुधि भूल।
दूसरी—बाँधा है किसने किसे, किसका किस पर प्यार;
कहो, सखी, किसका बना, कौन गले का हार?

सजा क़ुदरत ने देखो निराला है साज—

अहा ! कैसा रँगीला जुड़ा है समाज।

अक०—अच्छी चीज़ रही।

दरबारी—बहुत अच्छी, निहायत अच्छी; क्या कहना है।

अक०—अच्छा टोडरमल, इनाम देकर अब इनको विदा करो।

(टोडरमल का नर्तकियों को इनाम देकर विदा करना)

(अँगड़ाई लेकर) आसफ़ख़ाँ, तो अब तुम जाना चाहते हो ? ठीक है, ख़ातिरजमा रक्खो, हम जल्द बंदोबस्त करेंगे। महारानी का ख़त तो आ ही गया; उम्मेद है, वह मंत्री भी अब आता ही होगा। (हँसकर) आख़िर औरतों की अक़्ल औरतों ही की है !

पृथ्वी०—(चिंता के साथ) जहाँपनाह, मैंने पहले ही आपसे कहा था कि महारानी दुर्गावती आपसे लड़ना पसंद न करेंगी। देखिए, वही बात हुई न !

अक०—महाराज, आपने ठीक ही कहा था।

आसफ़०—(पृथ्वीराज से) महाराज, अभी देखते जाइए, ऊँट किस करवट बैठता है।

(चोबदार का प्रवेश)

चोब०—जहाँपनाह, जहाँपनाह की ख़िदमत में गढ़-मंडल से श्रीमान् अधारसिंहजी हाज़िर हुए हैं।

पृथ्वी०—(आप-ही-आप) हाय, यह क्या किया ! महा-रानीजी, बड़ा धोखा खाया; अपने शस्त्र को स्वयं शत्रु के हाथ

में दे दिया ! यह दुष्ट अब इसी से आपका गला काटेगा । खेद !

अक०—(ख़ुश होकर) अच्छा, उनको इज़्ज़त के साथ लिवा लाओ । (बीरबल, आसफ़ख़ाँ और पृथ्वीराज की ओर इशारा करके) आप लोग भी जाइए । (तीनों का जाना) जिस समय मंत्रीजी आवें, सब लोग उठकर उनकी इज़्ज़त करें ।

(तीनों के साथ अधारसिंह का आना; सब मंत्रियों का उठकर उसका सम्मान करना; अधारसिंह का अकबर को झुककर प्रणाम करना)

अक०—आइए, आइए । आपने बड़ी कृपा की, जो इतनी तकलीफ़ें उठाकर यहाँ पधारे । इसके लिये मैं आपका और आपसे भी बढ़कर आपकी महारानी साहबा का एहसानमंद हूँ । इधर विराजिए । (अधारसिंह का अकबर के पास बैठना) कहिए, महारानी साहबा अच्छी तो हैं ? आपके राज में ख़ूब अमन-चैन तो है ?

अधार०—भगवान् की दया और आपकी शुभ कामना से सब कुशल है, राज में अमन-चैन है, और श्रीमहारानीजी भी स्वस्थ हैं । (बग़ल में से रेशमी कपड़े की एक छोटी-सी पोटली निकालकर खोलता हुआ) श्रीमहारानीजी ने आपके लिये....

अक०—(ख़ुश होकर बीच ही में) मैं श्रीमहारानीजी की इस कृपा के लिये उनको बहुत-बहुत धन्यवाद देता हूँ । क्यों न हो ! देखो भाई मानसिंह, सच बात तो यह है कि श्रीमहारानीजी की बुद्धिमानी की जो तारीफ़ मैं आप लोगों से किया करता था—क्यों ? याद है ?

मान०—हाँ, जहाँपनाह !

(इतने में अधारसिंह पोटली में से निकालकर एक सूखा करेला अकबर के सामने रखता है, जिसे देखकर अकबर के चेहरे का रंग, क्रोध के मारे, एकदम बदल जाता है, और सब दरबारी अचरज करने लगते हैं)

अक०—(दरबारियों की ओर देखकर कुछ ज़ोर से) यह क्या है?

अधार०—(शांति के साथ) जहाँपनाह कुपित न हूजिए, महारानीजी का इरादा अपना सारा राज आपकी भेंट कर देने का था। पर सारे राज का वहाँ से उठाकर यहाँ ले आना असंभव है, इसलिये उन्होंने अपने राज का यह एक नमूना आपको अर्पण किया है, और प्रार्थना की है कि इसी को आप गढ़-मंडल का राज समझें। (अकबर की त्योरी चढ़ी रहती है, और सब दरबारी एक दूसरे की ओर हैरानी से देखते हैं)

अक०—(हैरानी से) आपकी इन बातों का मतलब मैं क्या समझूँ?

अधार०—जहाँपनाह, (करेला दिखाता हुआ) ये जो ऊँचे-ऊँचे-से दीखते हैं सो पहाड़ियाँ हैं; और नीचे ये लकीरें-सी जो हैं सो नदियाँ हैं। हमारा राज बिल्कुल इसी सूरत का है। श्रीमहारानीजी ने बड़े आदर के साथ यह भेंट आपको भेजी है, और विनीत भाव से प्रार्थना की है कि जैसे श्रीकृष्णजी ने सुदामा के तंडुल स्वीकार किए थे, वैसे ही आप भी मुझ गरीब की यह भेंट स्वीकार करने की कृपा करें, और मेरा गौरव बढ़ावें। (अकबर दरबारियों की ओर देखता है; दरबारी नीची निगाह कर लेते हैं)

आसफ़०—जहाँपनाह, इस गुलाम की राय में छोटी-से-छोटी

चीज़ भी, जो बतौर तोहफ़ा या सौगात पेश की जाय, क़ुबूल कर लेनी चाहिए। जब कि महारानी साहबा ने अपने राज का नमूना जहाँपनाह को नज़र किया है, तो अधारसिंह साहब का यह कहना भी बिल्कुल बजा है कि अपना कुल राज ही जहाँपनाह की ख़िदमत में पेश किया गया समझा जाय।

अधार०—श्रीमहारानीजी का यही विचार था।

आसफ़०—यह बात दूसरी है कि अधारसिंह साहब बूढ़े होने की वजह से उसे उठाकर न ला सके। ख़ैर, अगर हुक्म होगा, तो जहाँपनाह का कोई ग़ुलाम उसे उठा लाने की कोशिश करेगा।

अक०—(कुछ शांत होकर) ठीक है। अच्छा, अधारसिंहजी, मैं इसके लिये भी आपका और आपकी महारानी साहबा का मशकूर हूँ।

अधार०—जहाँपनाह, इसमें धन्यवाद देने का कोई कारण नहीं। महारानीजी ने केवल अपने कर्तव्य का पालन किया है, और मैं तो इस सौगात के लाने का साधन-मात्र हूँ, क्योंकि उनका दास हूँ।

अक०—आप बड़े बुद्धिमान् हैं। आपकी बुद्धिमानी की जितनी प्रशंसा मैंने सुनी थी, सब थोड़ी थी। बीरबल, जाओ, आपको ले जाकर हमारे 'स्वागत-भवन' में ठहराओ, और आपके आराम के लिये सब तरह का बंदोबस्त कर दो।

बीर०—जो हुक्म, जहाँपनाह। (अधारसिंह की ओर देखता है)

अधार०—चलिए।

(प्रणाम करके दोनो का जाना)

अक०—यह कायस्थ-बच्चा बड़ा चालाक है। इस तौहीन का क्या ठिकाना! क्या रानी ने हम लोगों को निरा बुद्धू ही समझ लिया है?

मान०—यह आदमी ऊपर से भोलेपन के साथ बातें करता है, किंतु भीतर से ठीक उलटा है।

आसफ़०—जहाँपनाह, जितना तजुर्बा इस खाकसार को इन लोगों का है, उतना शायद ही किसी को हो। ये बावन-गढ़ीवाले देखने में बड़े भोले-भाले और बुद्धू मालूम होते हैं, पर दरअसल होते हैं परले सिरे के चालाक।

अक०—गोंडवाने के राज की जगह सूखे करेले की भेंट! ज़रा ख़याल तो कीजिए।

ख़ानख़ाना—जहाँपनाह, इसका यह मतलब है कि जैसे सूखा करेला खा लेना कठिन है, वैसे ही हमारे राज को हड़प लेना भी कठिन है, और फिर, अगर कोई हड़प भी जाय, तो जैसे सूखा करेला खा लेने पर अपने पेट का भी खाया-पिया निकल जाता है, उसी तरह अगर हमारे राज को निगलने का इरादा किया, तो जहाँपनाह, गिरह का जो कुछ है, उसे भी दे बैठेंगे।

मान०—तनिक-से सूखे करेले का इतना लंबा-चौड़ा अर्थ! जहाँपनाह ने अच्छा किया, जो इस आदमी को स्वागत-भवन में नज़रबंद करा दिया।

आसफ़०—रास्ते का काँटा दूर हुआ। (चोबदार का प्रवेश)

चोब०—जहाँपनाह, कोई साधू हाज़िर हुआ है। जहाँपनाह से बहुत ज़रूरी काम बतलाता है।

अक०—(अचरज से) साधू ! और इस वक़्त !

(दरबारियों की तरफ़ देखता है। दरबारी भी 'साधू !' 'साधू !' कहकर अचरज से एक दूसरे की ओर देखते हैं)

ख़ानख़ाना—ख़ैर, बुलवाइए तो सही।

अक०—(चोबदार से) अच्छा, ले आओ।

(चोबदार का जाना और साधू-वेषधारी बदनसिंह को साथ लेकर आना; बदनसिंह की ताज़ीम करने के लिये सबके उठने से पहले ही बदनसिंह का सबकी ताज़ीम करने लगना; सबका अचरज में पड़ना)

बदन०—आप लोग विराजिए, मैं कोई पहुँचा हुआ साधू नहीं हूँ; केवल आपके सामने अपना दुखड़ा रोने आया हूँ।

अक०—(अचरज और शक के साथ) ओहो !

बदन०—क्या कहूँ,

> हीरे हुए हैं पत्थर; देखो समय की गति को !
> फेरा किसी ने बेढब सारे जगत् की मति को !

अक०—(संदेह के साथ) आख़िर मामला क्या है ?

बदन०—दक्खिन में गढ़-मंडल एक राज है, जिसमें महारानी दुर्गावती का बोलबाला है—

(सब दरबारियों का अचरज और उत्सुकता के साथ सुनना)

अक०—हाँ, यह तो मैं भी जानता हूँ।

बदन०—जहाँपनाह, क्षत्रिय तलवार की चोट सह सकते हैं, अपमान की नहीं।

मान०—सच है। (पृथ्वीराज का संदेह और दुःख के साथ गर्दन हिलाना)

बदन०—मैं वहाँ का एक निरपराध जागीरदार हूँ, जिसका सब कुछ छीन लिया गया है, और जो दूध में पड़ी मक्खी की भाँति वहाँ से बाहर निकालकर फेंक दिया गया है, जिससे दुनिया-भर में धूल चाटता फिरे।

पृथ्वी०—(आप-ही-आप) हा—

देशद्रोही यह रिपु के घर है आया ;
पैने लोहे को बेंटे ने है पाया !

अक०—मुझे अचरज है कि आप-सरीखे क्षत्रिय के साथ भी महारानीजी ने यह सलूक किया ! वैसे तो उनकी बड़ी तारीफ़ सुना करता हूँ।

बदन०—जहाँपनाह,

कान का कच्चा हो शासक, स्वार्थियों से हो घिरा,
तो भलेमानस का होता माजना है किरकिरा।

अक०—आप पर क्या तोहमत लगाई गई ?

बदन०—यही कि मैं अपनी प्रजा को तंग करता हूँ, और न-जाने क्या-क्या करता हूँ। मतलब यह कि जागीर छीनने के सौ बहाने।

अक०—मुझे अफ़सोस है कि और किसी के नहीं, सिर्फ़ आप ही के साथ ऐसा सलूक किया गया। पर अब आप चाहते क्या हैं ?

आसफ़०—जहाँपनाह, बीच में बोल उठने की गुस्ताख़ी मांफ़ हो, कुँवर बदनसिंहजी सच कह रहे हैं, वहाँ सब मामला इसी तरह से तित्तर-तीन हो रहा है।

बदन०—मैं जहाँपनाह की कुछ ख़िदमत करना चांहता हूँ।

अक०—(सोचता हुआ) हूँ—

बदन०—अगर जहाँपनाह मुझे पूरी तौर से सहायता दें, तो उस राज को, और तो क्या कहूँ—जहाँपनाह, अपना ही समझें।

पृथ्वी०—(आप-ही-आप)

धिक्कार है, पापी, तुझे सौ बार है धिक्कार ;
जो बेचता स्वाधीनता को है सरे-बाज़ार।

अक०—(उदासीनता दिखलाता हुआ) हाँ, हमारा कभी-कभी इरादा तो होता है, लेकिन फिर हम सोचते हैं कि क्यों झगड़े में पड़ें !

बदन०—जहाँपनाह, वहाँ के कई सरदारों को भी मैंने मिला रक्खा है, जो पहले तो महारानी की सहायता करेंगे, पर ठीक वक़्त पर अपनी फ़ौजों को लेकर हमारी ओर हो जायेंगे।

पृथ्वी०—(आप-ही-आप) हा !

निश्चय फूटे भाग, रजपूती, तेरे अहो !
जो घर ही की आग भस्म कर रही है तुझे ।

बदन०—और फिर जहाँपनाह का नाम सारे संसार में हो रहा है कि जहाँपनाह बड़े न्यायी और समदर्शी हैं। ऐसी दशा में जिस देश का प्रबंध अच्छा न जँचे, उसे शरण में लेकर वहाँ सुशासन का प्रबंध करना जहाँपनाह का ईश्वर का दिया अधिकार है । यदि जहाँपनाह-सरीखे धर्ममूर्ति शासक न हों, तो संसार से मर्यादा का लोप अवश्य अवश्य अवश्य हो जाय ।

दरबारी—बजा है, बजा है।

अक०—(बदन० की ओर) आपका कहना सच है, मगर किसी बात को करने से पहले उस पर जितना विचार मैं किया करता हूँ, उतना अभी इस बात पर मैंने किया नहीं है। अच्छा, आप हारे-थके चले आ रहे हैं, आज आराम कीजिए, कल फिर बातचीत होगी। (मानसिंह से) राजा साहब, कुँवर साहब को आप अपना मेहमान बनाइए।

मान०—जो हुक्म। बड़ी खुशी से। पधारिए, कुँवर साहब।

(दोनो जाते हैं)

आसफ़०—मुबारक हो, जहाँपनाह !

अक०—(हँसकर) मुँह से उस करेले की कड़वाहट दूर करने के लिये बाद को यह मिठाई अच्छी मिली !

पृथ्वी०—किंतु जहाँपनाह, मिठाई से करेला ही अधिक गुणकारी है, जो भीतर और बाहर एक-से स्वाद का होता है।

अक०—राजा साहब, आपका कहना सच है; परंतु करेले की कड़वाहट की परीक्षा मिठाई से और मिठाई के मिठास की परीक्षा करेले से करने में कुछ बुराई नहीं। दुनिया में सभी ज़ायक़े हैं—न सब बुरे ही हैं, न सब भले ही। कुछ-न-कुछ गुण और अवगुण सभी में हैं। (दरबारियों से) अब आज का काम पूरा हुआ; दरबार बरख़ास्त।

(सब दरबारियों का एक ओर और अकबर का दूसरी ओर जाना; केवल पृथ्वीराज का रह जाना)

पृथ्वी०—(आप-ही-आप) प्रकृति का सीधा-सच्चा और सुंदर उपहार करेला, गंदे मनुष्यों के हाथ की बनी मिठाई के सामने, आज तुच्छ समझा जाकर नज़रक़ैद किया गया है! सच है, दुनिया को वही चीज़ें अच्छी लगती हैं, जो पहले कान, नाक, आँख आदि इंद्रियों को सुख देती हैं; उनके बुरे प्रभाव का विचार कोई भी नहीं करना चाहता।

(प्रस्थान)

छठा दृश्य

स्थान—नगर के पास का भाग

(अस्त्र-शस्त्र से सुसज्जित अपने दो बच्चों के साथ सुमति का प्रवेश)

सुमति— (गाना—जोगिया)

नाथ, दुखिया हम भटक रहे ;

युगल-चरण-नौका को तजकर दुख की बाढ़ बहे।

देखो, बिना तुम्हारे हमने कितने कष्ट सहे;

दहा किए मन-ही-मन स्वामी, कभी न कहीं कहे।

हा नाथ, जंगल में ले जाकर जो व्यवहार नल ने दमयंती के साथ किया था, ऊपर से मीठी-मीठी बातें बनाकर जो व्यवहार राम ने सीता के साथ किया था, या सबका चित्त चुरानेवाले श्रीकृष्ण ने जो व्यवहार राधा के साथ किया था, क्या मैं भी उसी व्यवहार के योग्य थी? क्या हम स्त्रियाँ इसी के लिये रची गई हैं कि जिसको हम अपना तन, मन, धन दे दें, उसी के द्वारा अंत में दुत्कारी जायँ? अवश्य, अवश्य; क्योंकि देखती हूँ कि सदा से ही ऐसा होता आया है। अच्छा, न देखो मेरी ओर, माना कि मैं इसी योग्य हूँ, क्योंकि स्त्री हूँ, परंतु अपने इन नन्हे-नन्हे बालकों की ओर तो देखो। (कन्या को प्यार करती हुई) यह मेरी चंपा के फूल-जैसी बच्ची और (पुत्र को प्यार करती हुई) गुलाब के फूल-जैसा बच्चा वीरों का-सा भेष धरे तुम्हें खोजते फिरते हैं। स्वामी, हम किस लायक़ नहीं थे, जो आप हमें यों छोड़ गए? क्या हमने दुःखों से घबराकर कभी आधी बात भी आपसे कही थी? फिर? किसे चिंता थी राजपाट की? और किसे पड़ी थी आए-दिन रैयत से लड़ने-झगड़ने की? यदि हमारी जागीर कुछ

दिनों के लिये गई भी थी, तो क्या महारानीजी ने हमारी सुविधाओं में कुछ कमी की थी? कुछ नहीं। किंतु इसमें आप अपना अपमान समझकर और महारानीजी से रूठकर-देश निकालने की व्यथा स्वयं ही अपने सिर पर लेकर न-जाने कहाँ चले गए, और आपके बिना हम सब यों भटक रहे हैं।

(सुमेरसिंह का प्रवेश)

सुमेर०—(ध्यान-पूर्वक देखता हुआ; आप-ही-आप) यह कोई दुखिया क्षत्राणी दीखती है। देखूँ, क्या कहती है? (धीरे से पीछे हटकर छिप जाता है)

सुमति—नहीं नहीं, यह मेरा ही दोष है, जो मैं अपने स्वार्थ के वश यों सोचती हूँ। आपने तो खूब सोच-विचारकर ही ऐसा किया होगा। स्वामी, आप सुन नहीं रहे हैं, पर दुःख के कारण जो कुछ मेरे मुँह से निकल गया, उसके लिये मैं क्षमा माँगती हूँ।

सुमेर०—(प्रकट होकर) अरी दुखिया, तू कौन है? महारानी दुर्गावती के राम-राज्य में तुझ पर कौन-सा संकट आ पड़ा, और किधर से?

सुमति—(सुमेर० की ओर देखकर) हे वीर सेनापति, (सुमेर अचरज करता है) क्या तुम भी मुझे अब नहीं पहचानते, जो पूछते हो कि मैं कौन हूँ?

व' मणि हूँ मैं मुकुट से जो गिरी पैरों में है जाकर,
हूँ मैं वह अन्नपूर्णा, भीख के रहती जो कन खाकर;

समय के फेर से यह दिन भी देखा आज है मैंने,

कि छूटा घर भी है मुझसे, औ' छूटा मुझसे है बाहर ।

सुमेर०—देवी, तेरी दशा देखकर मुझे दुःख होता है, और न-जाने हृदय के किस गुप्त भाग से सहानुभूति का स्रोत उमड़ा चला आ रहा है । तेरे इन बालकों को देखकर मुझे अपने प्यारे दूसरे दो बच्चों की याद आ रही है । क्या तू मुझे अपना परिचय देने की कृपा करेगी ?

सुमति—वीर सेनापति, क्या मेरे अंग पर के ये फटे कपड़े और इन भोले-भाले बच्चों के कुम्हलाए हुए अधखिले फूल-सरीखे चेहरे आपको मेरा परिचय नहीं दे रहे हैं कि मैं एक परित्यक्ता वन-लता हूँ ।

सुमेर०—(ध्यान से देखता हुआ) ज्ञात होता है कि दुःख ने तुझको बहुत दीन कर दिया है, और—

सुमति—मतिहीन कर दिया है—हाँ, कहे जाओ, तुम भी कह लो, कोई कसर न छोड़ो—

यही तो बात है, दुर्भाग्य जिसको जब सताता है,

तो उसका बंधु भी उसको नहीं पहचान पाता है ।

सुमेर०—(पास आकर अचरज से) तो क्या मैं तुम्हारा कोई आत्मीय हूँ ?

सुमति—(अपने आँसू पोंछती हुई, सेनापति के कंधे पर हाथ रखती हुई) भैया—(मुँह ढककर रोती है)

सुमेर०—(पहचानकर) अरे ! प्यारी बहन !

(अपने आँसू पोंछता हुआ)

क्यों नहीं अब तक मुझे 'भैया' कहा प्यारी बहन ?

क्यों छिपाया वैद्य से रोगी ने अब तक अपना तन ?

(बच्चों को प्यार करता हुआ) बहन, यह मैं तुम सबका क्या हाल देखता हूँ ? मैने तो सुना था कि तुम सब लोग साथ ही चले गए थे !

सुमति—कहाँ ?

सुमेर०—आगरे।

सुमति—(अचरज से) आगरे ?

सुमेर०—हाँ।

सुमति—क्यों ?

सुमेर०—बहन, यह न पूछो—

गया विभीषण था जैसे करने लंका का बंटाढार,

उसी तरह जीजाजी हैं जा पहुँचे अकबर के दरबार।

सुमति—(चौंककर) हैं ! क्या यह सच है ?

सुमेर०—बिलकुल।

सुमति—क्या मैं सपना तो नहीं देख रही हूँ ? भैया—

सुमेर०—नहीं।

सुमति—सच बताओ, भैया, तुमने किससे सुना ?

सुमेर०—सुना ! अधारसिंहजी ने वहाँ से समाचार भेजे हैं।

सुमति—हाय, हे पृथ्वी, तू फट जा, और मुझे शरण दे। हे मेरे प्राण—

प्राणनाथ ने है किया जब स्वदेश से द्रोह ;
तो तुम भी अब चल बसो छोड़ देह का मोह।

(रोती है)

सुमेर०—जो होना था, वह हो गया।

सुमति—(उत्तेजित होकर) नहीं, हो कैसे गया, मैं अभी आगरे जाकर उन्हें समझाऊँगी और मनाकर लाऊँगी, और अपराध क्षमा कराने के लिये महारानीजी के पैरों पड़वाऊँगी।

सुमेर०—यह असंभव है।

सुमति—असंभव क्यों है? क्या मैं ऐसा नहीं कर सकती?

सुमेर०—

गिरा जो पेड़ से, फिर नहीं जुड़ता है उसमें फल ;
भला कैसे हरा होगा, जो तरु पहले चुका है जल?

सुमति—तो क्या महारानीजी उन्हें अब कभी क्षमा नहीं करेंगी?

सुमेर०—जिसने एक बार धोखा दिया, उसका विश्वास फिर कौन करेगा!

सुमति०—नहीं, यह बात नहीं है भैया; अब वह धोखा नहीं देंगे। मैं उन्हें समझाऊँगी। वह किसी के बहकाए में आ गए हैं। ऊपर से वह चाहे जैसे हों, परंतु भीतर से बड़े भोले हैं, इसमें संदेह नहीं।

सुमेर०—बहन, भोली तो तुम्हीं हो, जो ऐसा कहती हो।

यह वह राजनीतिक दाँव-पेंच का मामला है, जिसमें समय पर मिट्टी लोहा हो जाती है, और लोहा मिट्टी।

सुमति—अच्छा, न सही, पर तुम एक बार मेरी भेंट महारानीजी से करा तो दो।

सुमेर०—अच्छी बात है, चलो।

(सब जाते हैं)

सातवाँ दृश्य

स्थान—महारानी दुर्गावती के दुर्ग का एक भाग

(दो शरीर-रक्षिकाओं के साथ महारानी और रावजी का बातें करते हुए प्रवेश; वीरनारायण भी साथ है)

राव० महारानीजी, मैं तो कह चुका, मुझे जागीर-वागीर की परवा नहीं; और आपने जो कुछ मेरे विषय में सुना है, सब झूठ है। सरासर झूठ है।

रानी—रावजी, मैं सब समझती हूँ—जो आदमी जैसा है, मुझे सब खबर है।

राव०—यदि आपको मेरी बात का विश्वास नहीं, तो लीजिए। (तलवार निकालता है। उसको तलवार निकालता देखकर शरीर-रक्षिकाएँ उसकी गरदन को साधकर तलवार उठाती हैं। रानी संकेत से मना करती है) मैं अपना सिर धड़ से जुदा किए देता हूँ।

रानी—(दृढ़ता के साथ) जिनको अपनी करतूतों पर कुछ

लज्जा हो, वे ऐसा कर सकते हैं, मैं उनका हाथ नहीं पकड़ती; किंतु आपके लिये ऐसा कर सकना संभव नहीं।

राव०—क्यों ? क्या आपने मुझे कुछ पोच समझ लिया है ?

रानी—आप कोरे वेदांती हैं, जो ऊपर से तो बहुत-सी बातें मारा करते हैं, परंतु भीतर से काम, क्रोध, लोभ, मोह आदि में, और लोगों से कहीं अधिक, डूबे रहते हैं।

राव०—(तलवार को म्यान में रखता हुआ) आप विश्वास कीजिए, मैं चाहूँ तो अभी अपनी गरदन काट लूँ। हाँ, केवल यही सोचकर रह जाता हूँ कि तलवार भी ब्रह्म है, और गरदन भी ब्रह्म है। एक ब्रह्म को दूसरे ब्रह्म से क्यों लड़ाऊँ ? आपस की फूट अच्छी नहीं होती।

रानी—इन बातों में कुछ तत्त्व नहीं। आप आज से दुर्ग के बाहर नहीं जा सकेंगे; और यदि गए, तो जिस काम को करने का विचार करके भी आप अब तक हिचकते रहे हैं, वह काम मैं अपने हाथ से अथवा (शरीर-रक्षिकाओं की ओर संकेत करके) इनमें से किसी से भी क्षण-भर में करा दूँगी। रावजी, इतने बड़े स्वतंत्र राज्य की और इस सारी प्रजा के धन, मान और प्राणों की रक्षा का भार मेरे ऊपर है। अपने इस कर्तव्य के सामने मैं एक मनुष्य की हत्या करने से नहीं हिचक सकती। बचपन में मैंने खेल-ही-खेल में बहुत-से बाघ मारे हैं; अब मुझे पागल गीदड़ों से डर नहीं लग सकता। आप और वह देश-द्रोही बदनसिंह दोनों अच्छी तरह समझ लें।

(सुमति और बच्चों के साथ सुमेरसिंह का प्रवेश; सबका रानी को प्रणाम करना; सुमति का रानी के पैरों में पड़ना)

रानी—(सुमति से) बहन, तेरा सुहाग अखंड रहे। वीर-नारायण, इन बालकों के साथ खेलो; ये तुम्हारे ही भाई-बहन हैं।

(बच्चों का खेलते हुए निकल जाना)

सुमति—(अपने आँसू पोंछती हुई) महारानीजी, यह आपने क्या आशीर्वाद दिया! क्या मेरा सुहाग भी अखंड रह सकता है?

जिसमें कि तेल बचा न हो, कब तक जलेगा वह दिया?

जो हो निराशा से बिंधा, कब खिल सकेगा वह हिया?

रानी—बहन, शांत। मैंने जो आशीर्वाद तुम्हें दिया है, अपनी ओर से दिया है, न कि तुम्हारे पति के कर्मों की ओर से। मुझे तुम्हारा सब हाल ज्ञात हो गया है।

सुमति—महारानीजी यदि आप मुझे आज्ञा दें, तो क्या मैं उन्हें समझा-बुझाकर आगरे से वापस नहीं ला सकती?

रानी—ऐसा नहीं हो सकता। तुम उसकी अर्द्धांगिनी हो, यह सच है; किंतु उसके हृदय को मैं तुमसे अधिक पहचानती हूँ। उसने दीन प्रजा पर अत्याचार किया, और जब मैंने उसको उचित शिक्षा दी, जो कि मेरा धर्म था, तब वह अपने कुल को कलंकित करने के लिये व्यर्थ मुझसे रूठकर देश-द्रोही हो गया, और अपने बाप-दादों के सींचे हुए इस स्वतंत्रता के पेड़ की जड़ को काटने के लिये कुल्हाड़ी का बेंटा बन गया। वह अब

चारि

किसी के भी समझाने से न समझेगा। मैं उसे खूब जानती हूँ। तुम वहाँ जाकर क्या करोगी; अब कुछ दिनों में वह स्वयं ही आसफ़खाँ को साथ लेकर यहाँ आनेवाला है। तब तुम उसे समझाने की चेष्टा कर लेना। तुम इस विषय में व्यर्थ ही चिंतित होती हो।

सुमति—किंतु जब वह यहाँ आवेंगे, उस समय उन तक मेरी पहुँच होना कैसे संभव होगा।

रानी—(मुस्किराती हुई रावजी की ओर संकेत करके) यह रावजी भेंट करा देंगे।

राव०—(झेंपकर और सकपकाकर) हाँ, मैं चेष्टा करूँगा।

सुमति—और तब तक?

रानी—तुम्हें अपनी शक्ति में ऐसा ही विश्वास है, तो एक पत्र लिख दो; मैं बदनसिंह के पास भिजवा दूँगी। उस पत्र का जो कुछ जवाब वह दें, उस पर जैसा उचित समझना; करना।

सेनापति—अभी यही युक्ति ठीक रहेगी।

(एक सिपाही का प्रवेश)

सिपाही—श्रीमहारानीजी, फाटक पर एक मनुष्य खड़ा है, जो आपकी सेवा में कुछ निवेदन करना चाहता है।

रानी—कहाँ से आया है?

सिपाही—यह नहीं बतलाता।

रानी—(सोचती हुई) अच्छा, भेज दो। सेनापति, कौन

होगा ? (कुछ संकेत करती है ; सेनापति भी संकेत ही द्वारा उत्तर देता है । जीतू का आना और रानी को प्रणाम करके चरणों में पत्र रख देना; सेनापति का उस पत्र को उठाकर रानी को देना)

रानी—(खोलकर पढ़ती-पढ़ती) सेनापति, अधारसिंहजी क़ैद कर लिए गए।

सेना०—वह तो दीख ही रहा था। (रावजी मन-ही-मन ख़ुश होते हैं)

रानी—हाँ, मैंने उन्हें पहले ही समझाया था कि वहाँ न जाइए। (पढ़ती हुई) और देखो, यह क्या लिखा है। (संकेत से बतलाना; सेनापति का पढ़ना और मूढ़ की भाँति रानी की ओर देखना) सेनापति, क्या कहते हो ?

सेना०—महारानीजी, मैं सिपाही आदमी हूँ, मेरी इतनी बुद्धि नहीं कि इस विषय में कुछ मत स्थिर कर सकूँ।

रानी—रावजी, अधारसिंहजी क्या लिखते हैं, तनिक सुन लीजिए। सेनापति, सुना दो।

सेना०—(पत्र लेकर पढ़ता है)

"....और यह खूब समझ लीजिए कि राव गिरधारीसिंह, बदनसिंह की स्त्री, उनके बच्चे तथा उनसे सहानुभूति रखनेवालों को जीवित रहने देना फूस के घर में जलते हुए कोयलों को पड़ा रखना है। इसलिये मेरी राय है कि इन सबका काम, इस पत्र को पढ़ते ही, तमाम करा दीजिए; (सबका सन्न रह जाना, सेनापति आगे पढ़ता है) क्योंकि शत्रु और रोग को तो तुरंत ही निर्बीज करना चाहिए। आशा है, आप देरी न करेंगी।"

सुमति—हम तो पहले ही से मरे हुए हैं। महारानीजी, यदि मेरे और मेरे बच्चों के रक्त से सींचे जाने से स्वतंत्रता के इस वृक्ष को लाभ पहुँच सकता हो, तो मैं बड़े हर्ष के साथ अपनी जान देने को तैयार हूँ। यही नहीं, अपने बच्चों का बलिदान भी अपने ही हाथों करने को तैयार हूँ। आप आज्ञा दीजिए।

रानी—(सोचती हुई) हाँ; ठीक है, परंतु इस विषय पर अभी कुछ और विचार करने की आवश्यकता है। सेनापति, तुम राव-साहब को आदर के साथ अपने यहाँ रक्खो, और बहन सुमति, तू मेरे साथ रह, और तेरे बच्चे वीरनारायण के साथ खेलें। बस चलो।

(सबका जाना)



दूसरा अंक

पहला दृश्य

स्थान—आगरे के क़िले के नीचे

(रस्सी का पिंडा हाथ में लिए जीतू और गंगा भाट इधर-उधर देखते हुए आते हैं)

जीतू—(गंगा से एक स्थान की ओर संकेत करके) यही तो है पत्थर का घोड़ा? यहीं के लिये तो स्वामी ने संकेत किया था? (पीछे देखकर) मुझे डर यही है कि घोड़े कहीं हिनहिना न उठें।

गंगा—(ज़रा ज़ोर से) वैसे बँधे तो दूर हैं।

जीतू—(चुप रहने का संकेत करता हुआ) कवीश्वरजी, इतना चिल्लाकर बोलते हो! देखते नहीं कि (बतलाता हुआ) हमारी सीधी ओर, पीठ-पीछे, बादशाही सेना पड़ी हुई है, और पास ही उस दरवाज़े पर पहरुए ऊँघ रहे हैं।

गंगा—(धीरे से) हाँ, ठीक है, पर मैं तो यह सोचता था कि जैसे मेरी कविता पर संसार कान नहीं देता, उसी प्रकार मेरी आवाज़ सुनने में भी आनाकानी करता होगा। (हँसता है)

जीतू—(कुपित होकर) कवीश्वरजी, यह समय हँसने का नहीं, चुपचाप काम करने का है, चारो ओर नाकेबंदी हो रही

है, हँसने से फिर शीघ्र ही रोने की नौबत आ सकती है। (ऊपर देखता हुआ) स्वामी ने अभी कोई संकेत नहीं किया !

गंगा—(धीरे से) संभव है, वे अभी कारागारवाले महल से बाहर न आ सके हों। (दीवार की ओर देखता हुआ) किंतु देखो, वह लकड़ी-सी कैसी उठ रही है, मुँडेरों से ऊँची !

जीतू—(देखकर) ठीक है ; रात में इस प्रकार बाँस का ऊँचा होना स्वामी के संकेत के सिवा और कुछ नहीं हो सकता। अच्छा, तो अब भवानी का नाम लेकर रस्सी फेंकता हूँ। (फेंकता हुआ, धीरे से) जय भवानी की !

गंगा—(ज़रा ज़ोर से) बोल भवानी की जय !

जीतू—(डपटकर) कवीश्वरजी, तुम फिर चिल्लाए। कृपा करो, तनिक चुप रहो, कहीं ऐसा न हो कि तुम्हारे अधिक जोश के कारण हम सब बाँध लिए जायँ, और जिस मतलब से यह सब किया जा रहा है, वह चौपट हो जाय।

गंगा—हाँ, हुई तो भूल, क्या कहूँ, ज़ोर की कविता करते-करते आदत से लाचार हूँ।

जीतू—(दिखाता हुआ) वह देखो, रस्सी नीचे को सरकने लगी, (प्रसन्नता-पूर्वक) वह देखो। (अधारसिंह का रस्सी की सहायता से धीरे-धीरे नीचे उतरना; जीतू का ख़ुश होकर उछलना)

गंगा—(प्रसन्नता और जोश के साथ, जीतू से) करूँ कविता ? करूँ कविता ?

जीतू—अभी कुछ देर और ठहरो, वरना तुम्हारी कविता के

कारण सबको भयानक पुरस्कार मिलेगा; जान के लाले पड़ जायँगे। अभी तनिक चुप ही रहो।

गंगा—(हाथ मलकर बेचैनी दिखलाता हुआ) किंतु मेरे हृदय में इस समय कवितादेवी बाहर निकलने के लिये क़ुसमसा रही हैं; मुझसे अब अधिक आत्मदमन न हो सकेगा, मैं तो कुछ कहे डालता हूँ।

जीतू—यह देखो, स्वामी नीचे उतर आए! (जीतू पैर छूता और गंगा आशीर्वाद देने के लिये हाथ उठाता है; जीतू चुप रहने का इशारा करता है) स्वामी, घोड़े वह बँधे हैं, जल्दी चलिए। (दोनो जाते हुए गंगा को आने का इशारा करते हैं, जीतू गंगा को खड़ा देखकर रुकता हुआ कहता है) कवीश्वरजी, अभी चुपचाप भागो, कविता फिर कर लेना; अभी समय नहीं; कहा मानो। (दोनो का जाना)

गंगा—(जीतू की बात सुनी-अनसुनी करके ज़ोर से सोरठे की मिट्टी पलीद करता है)

निकल गया यह शेर, देखें कोई पकड़ तो ले!
धूल आँख में गेर, सारी बादशाहत की!

(चलने लगता है, इतने में दो पहरुए आकर पकड़ लेते हैं;)

गंगा—हैं! अलग! बस, मुझे कोई नहीं पकड़ सकता। (छुड़ाने की चेष्टा करता है)

एक पहरुआ—चुप, बदमाश।

गंगा—और पकड़ने से मतलब क्या! मेरी रचना में कोई दोष हो, तो बताओ।

दूसरा पहरुआ—बेईमान, क्या करता था यहाँ खड़ा-खड़ा ?

गंगा—काव्य-रचना करने के अवसर की ताक में था ?

पहला—(हूदा मारकर) अबे तू बकता क्या है ?

गंगा—सो मिल गया। परंतु तुम मुझे यह पुरस्कार क्या दे रहे हो ? क्या कवियों को अब यही पुरस्कार मिलेगा ?

दूसरा—(हूदा मारकर) देखता जा, अभी तुझे क्या-क्या मिलता है! 'मिल गया', 'मिल गया', क्या बकता है ? क्या मिल गया ?

गंगा—पुरस्कार, नहीं-नहीं, अवसर।

पहला—(दूसरे से) यह साला जासूस मालूम होता है।

गंगा—अरे बाबा, जिसे पकड़ना चाहिए था, वह तो निकल गया, अब मुझ गरीब की जान को क्यों आते हो ? (पहरुए विस्मय और भय से एक दूसरे की ओर देखते हैं)

दूसरा—किसे पकड़ना था ?

गंगा—उसी को, जो निकल गया।

पहला—कौन निकल गया ?

गंगा—जिसे पकड़ना था।

पहला—(दूसरे से) यह बड़ा बना हुआ शख़्स है, क़तलू, इस कंबख़्त का मलीदा कर दूँ, कहो तो ?

गंगा—अरे भाई, बेतुकी और असंगत बातें करके पिंगल के नियमों की व्यर्थ हत्या मत करो, देखो, आख़िर वे नियम भी किसी ने सोच-समझकर ही बनाए हैं। भला, सोचने की बात

है। पहले मेरी कविता में दोप वतलाओ, पीछे मुझे पुरस्कार दो, या न दो, तुम्हारी ख़ुशी। (दोनो पहरुए इसकी बात न समझकर एक दूसरे की ओर देखते हैं; गंगा समझता है कि मेरी बातों का असर पड़ रहा है, सो आगे कहता है) राजे-महाराजे एक-एक सोरठे पर ख़ुश होकर कवियों को निहाल कर दिया करते हैं, फिर मेरा छंद तो सोरठे से भी कुछ लंबा ही था—अगर पहली पंक्ति देखी जाय तो; और यदि दूसरी की कहो, तो मात्राएँ उसमें भी पूरी थीं। कहने में अड़चन पड़ती थी, तो क्या हुआ; अच्छे कामों में सदा अड़चन पड़ा ही करती है।

दूसरा—ज़रूर यह कोई वना हुआ शख़्स है।

गंगा—और फिर तारीफ़ यह कि उसमें कोई दोप नहीं।

पहला—(दूसरे से) क़तलूख़ाँ, वेफ़ायदे सिर खपाने से क्या फ़ायदा?

दूसरा—मैं यही सोचता था कि इससे कुछ भेद ले लिया जाता।

गंगा—मैं तो यहाँ तक राज़ी हूँ कि मुझे पुरस्कार भी न दो, मेरा पिंड तो छोड़ो वावा।

पहला—अरे कर ख़तम; नहीं तो मैं करता हूँ।

(दूसरा पहरुआ कटार निकालता है)

गंगा—(ज़ोर से) हा भगवान, कवियों को यह पुरस्कार!

पहला—(गंगा की गरदन पकड़कर झकझोरता हुआ) अवे चुप रह साले!

(दूसरा पहरुआ कटार भोंककर भाट को मार डालता है)

पहला—अब इस लाश को चुपचाप जमना में फेंक दो, जिसमें किसी को मालूम न पड़े, और कल तहक़ीक़ात न हो।

दूसरा—क्या डर है; तहक़ीक़ात होगी, तो कह देंगे कि एक जासूस को पकड़कर मार दिया। इसका तो हमें उलटा इनाम ही मिलेगा।

पहला—हाँ, कहीं उलटा ही इनाम न मिले (रस्सी की ओर देखकर उसकी ओर बढ़ता है) यह देखो, क़िले में से कोई निकल गया !

दूसरा—न-मालूम निकल गया या निकल जाने का इरादा करके ही रह गया; क्योंकि हम भी तो फ़ौरन् ही आ धमके थे।

पहला—(भाट की लाश की ओर संकेत करके) नहीं, निकल ही गया, क्योंकि अभी यह बदमाश कहता न था कि जिसे पकड़ना चाहिए था, वह निकल गया।

दूसरा—हाँ-हाँ, ठीक है; मगर वह था कौन ?

पहला—क़िले में न-जाने कितने लोग रहते हैं; होगा कोई।

दूसरा—ठीक है, यह आदमी उसी के साथ का होगा और किसी सबब से पीछे रह गया होगा।

पहला—कल तहक़ीक़ात ज़रूर होगी, इसलिये इस रस्सी को भी खींच लो, और जमना में फेंक दो; क्योंकि अगर यह मालूम हो गया कि क़ैदी इधर से भागा है, तो हमारी और तुम्हारी—दोनो की—जान जायगी।

दूसरा—सच कहते हो।

(रस्सी खींच लेता है)

पहला—अब एक काम करें, इस लाश को इस रस्सी में बाँधकर एक पत्थर भी इसमें कस दें, और फिर उसे जमना में फेंक दें, जिससे यह पानी में नीचे बैठ जाय।

दूसरा—यही ठीक होगा।

(लाश को बाँधने लगते हैं ; पर्दा गिरता है)

दूसरा दृश्य

स्थान—आगरे की एक सड़क

(चिंतित वदनसिंह अकेला घूम रहा है)

वदन०—(आप-ही-आप) बहुत सोचता हूँ, परंतु कुछ उपाय नहीं सूझता। इन दोनो चिट्ठियों ने मुझे डाँवाडोल कर दिया। सारा किया-कराया मिट्टी में मिला जाता है ! सुमति के आँसुओं की धार में मेरी प्रतिज्ञा कागज की नाव की भाँति औंधी-सीधी बही जाती है ! और मेरे बच्चे वहाँ पर—ओह !

फेंक दिए हैं आप ही, अहो, पेड़ ने फूल,
छोड़ा टूटी नाव ने, हाय, प्रेममय कूल।
हाय, प्रेममय कूल छोड़ वह चली भँवर में,
डूब जायगी जहाँ पहुँचते ही पल-भर में ;
जीवन-सुख के द्वार स्वयं ही बंद किए हैं,
अहो, पेड़ ने फूल आप ही फेंक दिए हैं।

(उदास होकर, फिर एकदम चौंककर) किंतु वदनसिंह ! वदनसिंह ! क्या तू कायर है ? क्या तू सच्चा क्षत्री नहीं ?

जो नहीं डरते लड़ाई में कभी तलवार से,
आज वे डर जायँगे क्या आँसुओं की धार से ?

नहीं-नहीं, कभी नहीं, कभी नहीं। (रावजी की चिट्ठी खोलता हुआ) रावजी ने सब प्रबंध कर दिया है। जीत होने में कोई संदेह नहीं—

आई लक्ष्मी को भला तज दे ऐसा कौन ?
कौन मिठाई फेंककर लेगा सत्तू-नोन ?

ठीक है; बस, हो चुका। रोग का निदान हो चुका; प्रेम और मोह का सम्मान हो चुका। (फिर उदासी से सोचता हुआ) ऐं !

पकड़ा जिसका हाथ, करके साक्षी अग्नि को,
छोड़ूँ उसका साथ, क्षण-भंगुर सुख के लिये !
शोक ! वे बालक सुखधाम, होंगे जब कुछ-कुछ बड़े,
लेकर मेरा नाम, थूकेंगे हा भूमि पर !

(सोचकर) नहीं-नहीं, यह बात नहीं होगी; ऐसी ओछी बातें मन में न ला—

होगा जिस दिन आप, गढ़मंडल का भूप तू,
मेटेगा संताप, करके वर्षा प्रेम की।

(हँसता हुआ) सुमति तू रानी होगी, और सुत होगा राजकुमार; नित्य ही प्रेम-पूर्ण दरबार जुड़ा करेगा। बादशाह सलामत ने मुझे 'राजा' की उपाधि देकर नियम-पूर्वक तिलक तो कर ही

दिया है। बस-बस, झूठी निर्बलता के बस न होकर स्पष्ट उत्तर दे देना चाहिए। रावजी को भी लिख दिया जाय कि आप बहुत अच्छा कर रहे हैं; ठीक समय पर आप ही से सहायता की आशा है। (सोचता हुआ) किंतु 'देशद्रोही' ! यह सुमति क्या कहती है ! देशद्रोही कौन है ? मेरी जागीर छिन गई; धन-संपत्ति तथा मान सब गया। अब यदि मैं फिर इनको प्राप्त करना चाहूँ, तो क्या मैं देशद्रोही हूँ ? जितने उमराव और जागीरदार हैं, इस बेईमान अधारसिंह की, जागीरें हड़पनेवाली, कूटनीति से तंग आकर हाहाकार कर रहे हैं। क्या इस अधारशाही की जड़ खोदने का प्रयत्न करनेवाला मैं देशद्रोही हूँ ? महारानी की बात तो पत्थर की लकीर ही है; जो बात एक बार मुँह से निकल गई, उससे हटना वह जानती ही नहीं। अधारसिंह की बातों में आकर उसने मेरा अपमान किया ! (क्रोध से) दुष्ट अधारसिंह और उसकी कठ-पुतली इस महारानी को मैं धूल में मिलाकर छोड़ूँगा। सुमति कहती क्या है ? (पत्र खोलकर पढ़ता हुआ) "मुझे भय है कि आपकी कुमति से, राजपूतों के इस एकमात्र स्वतंत्र राज्य पर मुगलों का झंडा फहराएगा। यदि ऐसी नौबत आई, तो आप मुझे और अपने बच्चों को जीवित न पाएँगे।" (सोचता हुआ) हुँः, स्त्रियों का हथियार है धमकी, और उसके बाद रोना। ख़ूब ! यह कैसे हो सकता है ? बादशाह सलामत ने मुझे राजा बना ही दिया है। सब राज-काज मेरे हाथों में रहेगा, फिर

मुगलों का झंडा कैसे फहराएगा? बस-बस, मैं उसे लिखे देता हूँ कि शांति के साथ कुछ दिन और काटो, घबराओ मत। जैसे कुछ दिनों बाद दमयंती से राजा नल और सीताजी से श्रीरामचंद्रजी जा मिले थे, उसी प्रकार मैं भी तुझसे आ मिलूँगा। (सोचता हुआ) आहा, अब समझा, अब समझा; वह महारानी के ही इशारे से यह सब लिख रही है। ठीक है; सो ही तो मैं सोचता था कि वह तो ऐसी थी नहीं, फिर अब यह क्या होगया! भोली-भाली स्त्री रानी के चकमे में आ गई है। (आसफ़ख़ाँ का प्रवेश)

आसफ़०—राजा साहब, ग़ज़ब हो गया!

बदन०—(हँसकर) जनाब ख़ाँ साहब, सवेरे-ही-सवेरे ठंडी हवा में टहलिए; ईश्वर का भजन कीजिए; (ज़ोर से) हँसी-मज़ाक़ के लिये दिन-भर पड़ा है, ख़ाँ साहब!

आसफ़०—ओहो, तो क्या आपने भी नहीं सुना? सच कहिए!

बदन०—(हँसकर) जी हाँ, मैंने कई आदमियों को यह कहते सुना था कि ख़ाँ साहब को रात-भर मच्छड़ों ने काटा और सोने नहीं दिया।

आसफ़०—अजी जनाब, वह बेईमान भाग गया!

बदन०—बेईमान तो यहाँ से भागे ही भले। भला बतलाइए तो, कौन बेईमान? ख़ाँ साहब—

आसफ़०—

बमुश्किल लोमड़ी को जाल में हमने फँसाया था,
बमुश्किल थेगला आकाश में हमने लगाया था!

मगर वह लोमड़ी भागी, फटा वह थेगला सारा,

(आप-आप-ही) **कि मलता हाथ है बदक़िस्मती पर ख़ान बेचारा।**

बदन०—अफ़सोस दिल गढ़े में। मगर और तो हुआ सो हुआ, यह सवेरे-सवेरे लोमड़ी थेगला फाड़कर ख़ूब भागी! (हँसता है)

आसफ़०—अजी राजा साहब, हँसी की बात नहीं है, रो दीजिएगा रो।

बदन०—तो भी—

आसफ़०—अधारसिंह कंबख़्त भाग गया।

बदन०—(चौंककर) शिव-शिव! ऐसा न कहिए, कभी-कभी मुँह से निकली बात सच हो जाया करती है, ऐसा हमारे हिंदू-शास्त्र में लिखा है।

आसफ़०—'सच हो जाया करती है' क्या मानी? आप हँसी समझ रहे हैं?

बदन०—यह आप कहते क्या हैं!

लोहे की ज़ंजीरों को है तोड़ भगा ख़रगोश!

सच कहिए, क्या किसी सबब से बिगड़ रहे हैं होश?

आसफ़०—सच नहीं तो क्या झूठ!

बदन०—कैसे?

आसफ़०—क्या जानें!

बदन०—भाग गया, और कुछ पता भी नहीं?

आसफ़०—जी।

बदन०—पहरुए सोते रहे?

आसफ़०—कुछ छूमंतर-सा कर गया !

बदन०—तो अब ?

आसफ़०—हम तो फिर भी यही कहेंगे कि उस कंबख़्त के निकल जाने पर भी चढ़ाई होनी चाहिए, और फ़ौरन् होनी चाहिए।

बदन०—ठीक है, ठीक है।

आसफ़०—तो बस चलिए, दरबार में हाज़िर होकर जहाँ-पनाह से अर्ज़ कर दें।

बदन०—तथास्तु। (दोनो जाते हैं)

तीसरा दृश्य

स्थान—गढ़मंडल के राजभवन का एक भाग

(सुमति और सुमेरसिंह)

सुमेर०—बहन, महारानीजी की यह बड़ी भारी कृपा ही है कि उन्होंने अधारसिंहजी की सलाह न मानकर, नीति के विरुद्ध, अब तक तुम्हें और बच्चों को छोड़ रक्खा है।

सुमति—भैया, माना कि वह हमारे इस राज के विरुद्ध षड्यंत्र रच रहे हैं; किंतु हमारे पुरखों ने इस राज्य का नमक खाया है; यदि मेरी और मेरे बच्चों की गरदनों से उसका भुगतान हो सकता है, तो मैं अपने प्यारे देश की स्वतंत्रता के लिये बड़े हर्ष के साथ अपना यह नश्वर शरीर देने को तैयार हूँ—

जिसकी कि धूल से मैं बनकर खड़ी हुई हूँ,
जिसका कि अन्न खाकर इतनी बड़ी हुई हूँ;
उस देश के लिये तन अपना निसार करना,
होना अमर है जग में, हरगिज़ नहीं है मरना।

सुमेर०—मैं तुम्हारी दृढ़ता देखकर बड़ा प्रसन्न हूँ। अंत में होगा तो वही, जो होना होगा; परंतु जीजाजी ने काम अच्छा नहीं किया।

सुमति—ठीक है; परंतु भाई, पति के पाप के परिणाम को समेटने और उसे अपने सिर पर लेने के लिये पत्नी तैयार है। पति इस देश पर आपत्ति की सेना चढ़ाकर ला रहे हैं, पत्नी अपनी जान देकर भी उस सेना को रोकने—नहीं; उसको छिन्न-भिन्न करने का प्रयत्न करेगी। पति के द्वारा लाई गई पराधीनता-रूपी नदी की बाढ़ रोकने के लिये पत्नी बाँध बन जायगी; इस मूसलाधार वृष्टि को रोकने के लिये वह छत्र बन जायगी, पति की लगाई हुई आग के लिये पत्नी प्रलयकाल की वृष्टि बन जायगी। समय आवे, तब देख लेना।

सुमेर०—किंतु बहन, तुम्हारे पत्र पर उन्होंने कुछ भी ध्यान नहीं दिया, यों ही रूखा-सा उत्तर दे दिया!

सुमति—मेरी दाहनी आँख आज तीन दिन से फड़क रही है। उनका उत्तर वह, और भगवान् का उत्तर यह है।

सुमेर०—तो अब चलकर महारानीजी से सब हाल कह दिया जाय—

सुमति—हाँ, चलो, देर क्यों की जाय।

(एक ओर दोनो का जाना ; दूसरी ओर से अधारसिंह और दुर्गावती का प्रवेश)

रानी—बड़ा अच्छा हुआ, जो तुम बचकर निकल आए। तुम्हारे साथ के आदमी भी सकुशल लौट आए न ?

अधार०—हाँ, केवल एक आदमी का पता नहीं लगता। सुना है, वह भागते समय पीछे रह गया।

रानी—चलो हुआ ; आ जायगा। यदि न आवे, या उसका कोई समाचार न मिले, तो समझ लेना कि मारा गया, और उसके घरवालों के नाम एक गाँव सदा के लिये लिख देना।

अधार०—बहुत अच्छा, किंतु मुझे दुःख है कि आपने बदनसिंह के कुटुंब को अब तक जीवित रख छोड़ा है—

है साँपिन औ' सँपोलों में भी विष कुछ कम नहीं होता,
कि टूटी नाव देती है सदा मँझधार में गोता।
नहीं ये भोले-भाले हैं कि विष के वृक्ष के फल हैं;
औ' धारे रूप ये निर्दोषिता का बस हलाहल हैं।

रानी—तुम्हारा कहना ठीक है। मैं भी इनको जीवित रहने देना नहीं चाहती; किंतु सुमति ने बदनसिंह को जो पत्र लिखा है, उसके उत्तर की बाट देख रही हूँ।

अधार०—उत्तर ! महारानीजी, जो अकबर-रूपी कुल्हाड़ी का बेंटा बन गया है—उसी वृक्ष की जड़ काटने के लिये जिसका वह अंग है ; अकबर-रूपी बल में छल बनकर जा मिला

है—अपने ही घर का सर्वनाश करने के लिये, उससे आप कैसे उत्तर की आशा कर रही हैं ?

रानी—तुम्हारा कहना सच है, परंतु तो भी उसके उत्तर के लिये कुछ और ठहरना बुरा नहीं है ; क्योंकि सेनापति सुमेरसिंह उसकी पत्नी का भाई है, अधिक कहना व्यर्थ है। कहीं एक काँटे को निकालते-निकालते दूसरा काँटा पैर में न गड़ जाय।

अधार०—सुमेरसिंह की नीयत अभी तक अच्छी है, ऐसा कहना तो अनुचित नहीं; परंतु समय आने पर उसका बदल जाना असंभव भी नहीं। इसलिये मेरी सम्मति है कि लड़ाई का संचालन किसी और से कराया जाय।

रानी—मंत्री, यह लड़ाई हँसी-खेल नहीं। इस पर हमारे देश की स्वाधीनता और हमारी संतान के भविष्य की बाज़ी लगी हुई है। इसका संचालन मैं स्वयं करूँगी। मैंने पहले ही से सोच रक्खा है। कहो, अब रावजी के विषय में—

अधार०—महारानीजी, इस आधे सिड़ी का भी जीवित रहना ठीक नहीं।

रानी—सच है; किंतु सोचने की बात है कि यदि बदनसिंह के कुटुंब, रावजी और दूसरे ऐसे ही लोगों की, जिनकी देश-भक्ति पर हमको संदेह है, एक साथ हत्या कर डाली गई, तो हमारी ही प्रजा हमारे विरुद्ध हो जायगी। सरदारों में भी असंतोष बढ़ेगा। यही सब बातें सोचकर अभी कुछ दिनों

के लिये मैंने इनकी मृत्यु को टाल देना उचित समझा है। रावजी आधे सिड़ी हैं।

अधार०—महारानी, आधे सिड़ी पूरे सिड़ी से कहीं बुरे होते हैं। पूरे सिड़ी पागलख़ाने में बंद रहने के कारण किसी को हानि पहुँचाने में असमर्थ रहते हैं; परंतु आधे सिड़ी स्वतंत्रता-पूर्वक संसार में घूमते-फिरते और समाज-रूपी शांत सरोवर में न-जाने कहाँ से फेंके गए ढेलों की तरह आ गिरते और अशांति फैलाते हैं।

(सुमेरसिंह और बच्चों के साथ सुमति का प्रवेश; सबका रानी को प्रणाम करना)

रानी—कहो सुमति, तुम्हारे पत्र का कुछ उत्तर आया?

सुमति—महारानीजी, क्या कहूँ—(आँसू पोंछती हुई) न-जाने किसके बहकाने में आ गए हैं?

अधार०—जो खोटा हो चुका सिक्का, तो वह फिर कब खरा होगा?
जो सूखा पेड़ हो जड़ से, तो वह फिर कब हरा होगा?

सुमति०—महारानीजी, इस विषय में मंत्रीजी के जो विचार हैं, वही मुझे भी ठीक जँचते हैं। अर्थात् हमको वही करना चाहिए, जिससे देश की स्वाधीनता की रक्षा हो। (बच्चों को आगे करती हुई) ये बच्चे और यह मैं—हम सब आपकी आज्ञा के अनुसार देश की स्वतंत्रता की रक्षा के लिये अपने प्राण देने को प्रस्तुत हैं। महारानीजी, स्वतंत्रता के लिये मरने का अवसर

वार-बार नहीं मिलता ; किसी विरले ही भाग्यवान् को कभी मिलता है। अपने देश को यवनों के हाथ बेचनेवाले एक देश-द्रोही की पत्नी अपनी और अपने बच्चों की जान देकर पति के पाप का प्रायश्चित्त करना चाहती है। इसे आज्ञा दीजिए। महारानीजी, यह कुनबा निर्बीज हो जाय, सो ही अच्छा; क्योंकि यदि ऐसा न हुआ, तो हमारी ही संतान हमारा नाम लेने में लज्जित हुआ करेगी और हमको सदा घृणा के साथ याद किया करेगी ; हमारा कुनवा देश-द्रोही और विश्वास-घातियों का कुनबा कहलायगा, और हमारे यहाँ का प्रत्येक व्यक्ति संसार में घृणा और संदेह की दृष्टि से देखा जायगा। ऐसे जीने से मर जाना कहीं अच्छा।

(रानी का मंत्री की ओर देखना)

मंत्री—महारानीजी, यहाँ दया और नीति की लड़ाई है। इस समय हमें नीति का सहारा लेना चाहिए, न कि दया का। (सुमेरसिंह से) क्यों सेनापतिजी ?

सुमेर०—महारानीजी, मंत्रीजी का कहना ठीक है, हमें नीति का ही सहारा लेना चाहिए। मुझे इस अपनी प्यारी वहन और उसके वच्चों का प्रेम नहीं है, देश की भलाई का ही ध्यान है।

रानी—(मंत्री से) तुम नीति-निपुण हो, और (सुमेर० से) तुम सिपाही हो। (मंत्री से) तुम्हारा हृदय नीति और (सुमेर० से) तुम्हारा हृदय तलवार के वार करते-करते कठोर हो गया है।

यद्यपि मैं भी नीति और तलवार दोनो ही के खेल खूब जानती हूँ, परंतु न-जाने क्यों मेरा हृदय इस समय इन बच्चों पर नीति या तलवार का नहीं, किंतु दया का वार करना चाहता है। यह बात मेरी प्रकृति के विरुद्ध है, और मुझे इस पर स्वयं आश्चर्य हो रहा है। (बच्चों की ओर संकेत करती हुई मंत्री से)

लगे कँटीले पेड़ पर, किंतु नहीं हैं शूल;
घर सौंदर्य-सुगंधि के, हैं ये प्यारे फूल।

सुमति—(रानी के पैरों में गिरती हुई) महारानीजी—

दया का ऋण है भारी, बल नहीं मुझमें चुकाने का,
(ऊपर संकेत करती हुई)
वही भगवान अवसर दे मुझे कुछ कर दिखाने का।

रानी—अच्छा-अच्छा, चलो उठो। मैं तुम्हें अपने महलों में रक्खूँगी।

(मंत्री का असंतुष्ट-सा दिखाई देना ; सबका जाना)

चौथा दृश्य

गढ़मंडल के पास एक स्थान

(सरदार भोगलूसिंह और छिपेलूसिंह का प्रवेश)

छिपेलू०—तो सरदार साहब, मतलब यह है कि आए दिन लड़ाई! आए दिन लड़ाई! लड़ाई! लड़ाई! एक दिन हो, दो दिन हो! माना मैंने कि हमारा काम ही लड़ना है, किंतु हरएक काम की भी तो कुछ सीमा हुआ करती है।

भगेल्ल०—आपका कहना ठीक है कि व्यर्थ लड़ना—लड़ाई ! लड़ाई ! आदमी न हुए, कोई जानवर हुए !

छिपेल्ल०—परमात्मा ने मनुष्य को इसलिये उत्पन्न नहीं किया है कि वह अपनी ही-जैसी सूरत के दूसरे प्राणियों से लड़ता फिरे। अरे भई, तुझे एक वस्तु की आवश्यकता है, तो तू ले ले—जान तो छोड़। बस इतनी ही नम्रता दिखाने से दुनिया पिघलकर मोम हो जाती है, और सब झगड़ा-टंटा मिट जाता है।

भगेल्ल०—राव गिरधारीसिंह ने जो उपदेश इस समय राजपूतों को दिए हैं, वे मुझे बहुत अच्छे लगते हैं।

छिपेल्ल०—क्या हैं वे ?

भगेल्ल०—वैसे तो रावजी नज़रबंद हैं ; किंतु उन्होंने अपने भरोसे के आदमियों द्वारा यह कहलाया है कि हे राजपूतो, सच्ची वीरता आत्म-संयम-पूर्वक क्रोध को जीतने और शत्रु को क्षमा करने में है, न कि व्यर्थ प्राण देने और लेने में।

छिपेल्ल०—है तो ठीक !

भगेल्ल०—यही नहीं, उन्होंने यह भी कहवाया है कि मेरे, बदनसिंहजी के, और दूसरे जागीरदारों के पूर्वजों ने अपनी जान को हथेली पर रखकर, बल्कि कभी-कभी देकर भी, इस राज की जड़ जमाई थी, सो आज तुम हमारा हाल देख ही रहे हो ! तुम्हें भी अपने साथ यही व्यवहार कराना हो, तो लड़ना।

छिपेल्ल०—क्या महारानीजी को रावजी के इस उपदेश का हाल नहीं मालूम ?

भगेल्ल०—मालूम क्यों नहीं ! तभी तो बेचारे रावजी पर और भी कड़ी दृष्टि रक्खी जाती है। अब उनसे मिलना-जुलना तो एक ओर रहा, उन्हें कोई देख भी नहीं सकता ; और न वे ही किसी को देख सकते हैं। अधारसिंह की तो राय थी कि उनका सिर ही काट लिया जाय, परंतु फिर न-जाने क्या सोच-कर ऐसा नहीं किया गया।

छिपेल्ल०—और मैं आपसे यह कहता हूँ सरदारजी, बदन-सिंहजी ने जो ख़बरें भेजी हैं कि अकबर का राज राम-राज है, सबकी जागीरें वापस मिल जायँगी, बल्कि और भी बहुत कुछ मिल जायगा—सो ?

भगेल्ल०—वैसे यदि यह मान भी लिया जाय कि लड़ने में कुछ बहुत बुराई नहीं है, तो भी बुद्धिमानी इसी में है कि लड़ने से पहले यह देख लिया जाय कि जिससे लड़ना है, वह अपने से निर्बल भी है या नहीं। भला सोचिए कि यदि हिरन सिंह से लड़ पड़े, तो क्या हो ? दीपक आँधी से भिड़ जाय, तो क्या हो ? ख़रगोश हाथी के सामने अड़ जाय, तो क्या हो ? अपने-अपने बल का सबको घमंड होता है, पर सेर को सवा सेर से सदा बचे रहना चाहिए—

नदी पेड़ों व चट्टानों का सारा गर्व हरती है,
मगर सागर से भिड़कर आप अपना नाश करती है।

छिपेल्ल०—बहुत ठीक ! बहुत ठीक ! यह आपने मेरे मन की बात कही। माना हमने कि क्षत्रियों का कर्म लड़ना है, परंतु किनसे ? अरे मूर्खो, दूसरों से न लड़कर अपनों से लड़ो ! अपनों से लड़ो ! अर्थात् ? अर्थात् ? वही बात—क्या थी वह ? अर्थात् दूसरों से लड़कर अपनी जान क्यों व्यर्थ गँवाते हो ? जो इतनी हिम्मत करके आपसे लड़ने आ रहा है, वह अवश्य आपसे बल और साहस में अधिक है। उसे कुछ दे-लेकर राज़ी कर लेना ही बुद्धिमानी है।

भगेल्ल०—बिलकुल ठीक ! बिलकुल ठीक !

छिपेल्ल०—भला चित्तौर में जिसने जगाकर शेर को मारा,
कि कुचला ख़ूब पैरों से है राजस्थान ही सारा,
उसी से जा रहा लड़ने हमारा राव, देखो तो !
पतंगा दीप से भिड़ने का सजता साज, देखो तो !

भगेल्ल०—मैं तो पहले ही कह चुका हूँ सरदार साहब, किंतु मेरी और आपकी राय से तो काम नहीं चलने का, और दूसरे सरदारों में भी इस प्रकार के विचारों की चर्चा करनी चाहिए—चर्चा ही नहीं, इनका प्रचार भी करना चाहिए।

छिपेल्ल०—लक्षण ऐसे दीखते हैं कि सभी सरदारों का भाग्य एक-सा नहीं, जो हमारी बात मान लें। उनकी तो सारी क्षत्रीपन की ऐंठ शायद इस लड़ाई के बहाने दूर होनेवाली है। इसलिये हर किसी से कहना भी ठीक नहीं। सोच-समझकर बात करना चाहिए, क्योंकि अगर महारानीजी को यह ज्ञात हो गया कि

हमारी और आपकी शुभ सम्मति यह है, तो फिर विना लड़े ही गरदन से हाथ धोना पड़ेगा।

भगेलू०—ठीक है; हरएक काम सोच-समझकर करना चाहिए। जब परोपकार में पिट जाने का डर हो, तो ऐसे परोपकार को दूर ही से नमस्कार। जब हवन करने में हाथ जलता दीखे, तो ऐसे हवन को आग में डाले। नीति से काम लेना चाहिए नीति से।

छिपेलू०—तो चलिए, अब चलकर महारानीजी के सामने खूब बढ़-बढ़कर बातें मारें, जिससे हमारे ऊपर किसी को कुछ संदेह न हो।

भगेलू०—जी हाँ, आइए! (दोनो गए)

(एक राजपूत का प्रवेश)

राजपूत—(एक ओर देखकर) अरे हो रे! और सब कहाँ गए?

(दूसरे राजपूत का प्रवेश)

दूसरा—ऐसे ही इधर-उधर घूमें हैं।

पहला—अरे भरती हो गई विनकी?

दूसरा—हाँ।

पहला—और तेरी?

दूसरा—हाँ, और तेरी?

पहला—हाँ।

दूसरा—तो सब जवान कित्ते होंगे?

पहला—हैं कोई दस हजार।

दूसरा—लड़ना तो है नहीं, हम करेंगे क्या ?

पहला—वाह, लड़ना कैसे नहीं है, हम ऐसी लड़ाई लड़ेंगे कि जैसी दुनिया में किसी ने न लड़ी होगी।

दूसरा—अर्थात् ?

पहला—सब हथियारों से लैस होकर भी हम मिट्टी के बने सिपाहियों की भाँति कुछ भी मार-काट न करेंगे।

दूसरा—फिर हथियार का बोझ ही क्यों बाँधा जाय ?

पहला—तैं तो कुछ नहीं जाने है—देख, (कान के पास मुँह ले जाकर) ठीक समय पर यहाँ की रानी को धोखा देना होगा ; उसकी फौज में भरती होकै भी हम बादशाह की फौज पै हथियार नहीं उठावेंगे, वरन् उलटे पीछे को भागेंगे, जिससे रानी के असली सिपाही भी हमें भागता देखकर हिंम्मत हार बैठें, और उनके पैर उखड़ जायँ।

दूसरा—इससे लाभ ?

पहला—इससे लाभ-ही-लाभ है, हानि हुई कहाँ, जो बताई जाय।

दूसरा—अर्थात् ?

पहला—जो रानी की जीत हुई, तो हम बादशाह की फौज का पीछा नहीं करेंगे, और जो रानी की हुई हार, तो खूब लूटेंगे, खूब लूटेंगे। महाराज मानसिंहजी की यही आज्ञा है।

दूसरा—(हँसकर) मजे का डौल है। हम हैं जलते हुए कोयले, जिन्हें कुल-दीपक महाराज श्रीमानसिंहजी ने रुई में

लपेटकर इस रानी के झोंपड़े में रख दिया है। बड़ा स्वाँग है—क्यों न?

पहला—क्योंकि वैसे यहाँ की रानी बड़ी तगड़ी है, बड़े-बड़े तुर्कों और मुगलों के दाँत खट्टे कर चुकी है।

दूसरा—दारी को लेकै भाग जाऊँ, ऐसा मन करै है मेरा तौ।

पहला—आगरे से आते में मेरी कुसुंबे की डिब्रिया कहीं गिर पड़ी, अभी तक इधर-विधर से माँग-जाँचकै काम चलाया, अब मोल लूँगा। चल, ले लूँ।

दूसरा—अरे मोल क्या लेंगे, वैसे ही लूट लेंगे। हम तो जिस थाली में खाने बैठे हैं, उसी में छेद करने आए हैं। हम कहीं दाम देकै कोई जिनस खरीदेंगे?

पहला—तो मुझे तो तलब लगी है।

दूसरा—तो चल। (जाते हैं)

(कुछ लड़कों और लड़कियों का हथियार से लैस आना और गाना)

(गाना)

है मातृभूमि पर बिपत पड़ी अब भारी,
करने को उसको दूर, करो तैयारी।—
जिसकी कि गोद में लोटे, कूदे, खेले,
जिसने कि हमारे लिये बहुत दुख झेले,
क्या उस पर पैर धरेगा अत्याचारी?

है मातृभूमि पर०—

लड़कर स्वदेश के लिये समर में मरना,
है धर्म-युद्ध में प्राण-विसर्जन करना,
अपनी तो होगी कीर्ति, शत्रु की ख़्वारी,
है मातृभूमि पर०—
लड़कर अर्जुन ने कैसा नाम कमाया,
है भीष्म, भीम आदि ने अमर पद पाया,
थे हुए इन्हीं में तो ऐसे प्रणधारी,
है मातृभूमि पर ०—
जब तक इस तन में बाक़ी जान रहेगी,
प्रिय जन्मभूमि यह तब तक दुख न सहेगी,
देखें, कोई छीने स्वतंत्रता प्यारी—
है मातृभूमि पर ०—
(प्रस्थान)

पाँचवाँ दृश्य

स्थान—दरबारख़ास का कमरा

(बादशाह, मानसिंह आदि बैठे हैं)

अक०—इन बातों पर मैंने बहुत विचार किया, और अंत को मैं इसी नतीजे पर पहुँचा कि सचाई सभी धर्मों में एक-सी है। हाँ, ऊपरी बातों में कुछ भेद अवश्य है, सो भी ऐसा नहीं कि एक दूसरे से लोग नफ़रत करें।

दरबारी—सच है जहाँपनाह !

अक०—हिंदू, मुसलमान, ईसाई, सबका खुदा एक है। जो राम है, वही रहीम है। इन धर्मों के सिद्धांतों पर अगर सचमुच लोग चलने लगें, तो आपस में वैर नहीं, प्रेम ही बढ़े। विना किसी के सिद्धांत जाने उससे नफ़रत करना वह कट्टरपन और जहालत है, जिसको खुदा कभी माफ़ नहीं करता।

दर०—सच है जहाँपनाह !

अक०—(तानसेन से) अच्छा तानसेन, कोई नई चीज़ तो सुनाओ।

(गाना)

अहाहा, जस तेरा महाराज,
छाया चारो ओर, अमृत-सा बरस रहा है आज। अहाहा ०—
ऐसा किया प्रजा का पालन,
जैसा मा करती है लालन,
हिंदू, मुसलमान, ईसाई सबको दिया स्वराज। अहाहा ०—
प्रेम- मिलन का दृश्य दिखाया,
तू कोई पैग़ंबर आया,
टूटी दुनिया को है जोड़ा एक सूत्र में आज। अहाहा ०—

अक०—वाह तानसेन वाह, खूब वक्त की चीज़ सुनाई।

दर०—वाह, वाह, वाह, खूब वक्त की चीज़ सुनाई ; बजा फ़रमाते हैं जहाँपनाह !

(चोबदार का आना)

चोब०—जहाँपनाह की सेवा में राजा बदनसिंहजी और सूबेदार आसफ़ख़ाँ हाज़िर हुए हैं।

अक०—अच्छा, भेज दो।

चोब०—जो हुक्म जहाँपनाह।

(चोबदार का जाना, और बदनसिंह और आसफ़ख़ाँ का आकर प्रणाम करना)

अक०—पधारिए राजा साहब; ख़ाँ साहब, तशरीफ़ लाइए; विराजिए। आप लोग ख़ूब आए; मैं तो याद ही कर रहा था।

आसफ़०—भला जहाँपनाह याद फ़रमाएँ और ग़ुलाम ख़िदमत में हाज़िर न हो; क्या मानी?

बदन०—इसमें क्या शक है।

अक०—तो राजा साहब और ख़ाँ साहब, मेरी राय है कि अब देर न करनी चाहिए। (मानसिंह की ओर संकेत करता हुआ) हमारे राजा साहब के भेजे हुए दस हज़ार राजपूत सिपाही तो उनकी सेना में मिल ही गए होंगे?

मान०—जी हाँ, जहाँपनाह। मेरे पास ख़बर आ गई कि वह सब काम जिस ढंग से होना चाहिए था, पूरा हो गया है।

अकबर—तो बस मैं चाहता हूँ कि यहाँ से, अलावा हाथियों के, पचास हज़ार छटे हुए जवान, जो चित्तौड़ का मैदान देख आए हैं, भेजे जायँ। उनके सिपाहियों से हमारे सिपाहियों की संख्या तिगुनी रहनी चाहिए, जिससे घेरा डालने में सुबीता हो, और उनके एक सिपाही को अपने सामने हमारे तीन सिपाही दीखें। (मानसिंह की ओर देखना)

मान०—जहाँपनाह, ऐसा ही प्रबंध कर दिया गया है।

अकबर—यह आपने बहुत अच्छा किया, राजा साहब। अब मैं (आसफ़ख़ाँ की ओर देखकर) ख़ाँ साहब से यह दरयाफ़्त करना चाहता हूँ कि और कोई ख़ास बात तो इस इंतज़ाम के मुतल्लिक़ ऐसी नहीं है, जिस पर ग़ौर करने की ज़रूरत हो? क्योंकि आपको वहाँ का तजुर्बा है।

बदन०—जहाँपनाह, मुझे एक बात कहनी है।

अकबर—फ़रमाइए, राजा साहब।

बदन०—उधर की सेना से मोर्चा लेने के लिये तिगुनी सेना भेजना निस्संदेह बहुत अच्छा है, परंतु जहाँपनाह, गुत्थम-गुत्था की लड़ाई में उधर के एक आदमी को इधर के तीन काफ़ी न होंगे। (सबका अचरज करना)

अक०—(अचरज से) इसलिये?

बदन०—इसलिये एक हज़ार तोपें और भेजी जायँ। जहाँपनाह, मैं आपके बहादुर सिपाहियों पर कटाक्ष नहीं करता; परंतु अनुभव मुझे यह बात कहने के लिये विवश करता है कि तोपों के बिना उन लोगों को जीत लेना कठिन है। उनके पास तोपें नहीं हैं, और अभी तक वे उन्हीं लोगों से जीतते रहे हैं, जिनके पास, उन्हीं की तरह, तोपें नहीं थीं। मुझे पूरा विश्वास है कि तोपों की मार से वे उजड्ड और जंगली एकदम सहम जायँगे—वैसे चाहे हज़ार निडर हों—और यों अंत में मैदान हमारे ही हाथ रहेगा।

आसफ़०—जहाँपनाह, राजा साहब ने बहुत ठीक फ़रमाया; यह ख़ादिम भी यही अर्ज़ करनेवाला था।

मान०—राजा साहब ने जो प्रस्ताव किया, और ख़ाँ साहब ने जिसका अनुमोदन किया, उसका मैं समर्थन करता हूँ।

अकबर—तो ठीक है, ऐसा ही कीजिए। सोचा तो मैंने भी पहले यही था, लेकिन वह देश पहाड़ी है, इसलिये मैं अपने मन में निश्चय न कर सका था कि तोपें वहाँ भेजी जायँ या नहीं। (बदनसिंह से) मगर राजा साहब, क्या सचमुच ही उधर के लोग इतने कड़े हैं कि उनमें से एक-एक हमारे तीन-तीन सिपाहियों को भी भारी पड़ जायगा?

बदन०—जी हाँ, जहाँपनाह। कारण यह है कि वे उतने समझदार नहीं हैं, जितने जहाँपनाह के सिपाही; और आप जानते ही हैं कि समझदारी और वीरता दो तलवारें हैं, जो एक म्यान में नहीं रह सकतीं। बेसमझ हथछुट होते हैं, समझदार में सहनशीलता या अपने प्राणों का मोह हुआ करता है; इसलिये सृष्टि के आदि से ही प्रायः समझदार लोग बेसमझों के हाथों पिटते रहे हैं। हमारे देवासुर-संग्रामों में भी समझदार देवता प्रायः हारा ही करते थे। गोंड लोग ठेठ वीरता और ऐंठ के पुतले हैं; सीधे और निडर तो इतने हैं कि जहाँ कह दीजिए, खड़े रहेंगे, चाहे वहाँ बिजली ही गिरती हो। उस बिजली से उनके प्राणों का नाश हो जायगा, यह बात सोचना या इस पर विचार करना उनके स्वभाव में है ही नहीं।

तक कि उस देश का राजा ही बना चुका हूँ, और भरे दरबार में राज-तिलक कर चुका हूँ। वहाँ पहुँचकर और अपने देश को जीतकर अपना सिंहासन लेना आपका काम है, और उसके लिये आपकी पूरी-पूरी सहायता करना मेरा कर्तव्य ; क्योंकि आप मेरे मित्र हैं, और मित्र की सहायता करना मित्र का धर्म है। लेकिन अगर किसी कारण से आपका जी इस काम के करने में तनिक भी हिचकता हो, या आगे हिचकने की संभावना हो, तो अभी से कह दीजिए ; मैं कुछ भी बुरा न मानूँगा, और सारा प्रबंध समेट लूँगा ; क्योंकि (आसफ़ख़ाँ की ओर देखकर) यदि आप लोगों में से कोई भी, ठीक वक़्त पर, ढीले पड़ गए, तो हमारी बड़ी भारी हानि होगी। धन और जन की हानि सही जा सकती है, पर अपने मान की हानि नहीं सही जा सकती।

वदन०—जहाँपनाह—

अकबर—राजा साहब, यह आप अच्छी तरह समझ लीजिए कि अकबर को अब नए-नए देशों पर अधिकार जमाने की तृष्णा नहीं है। यहाँ तक कि आप जानते ही हैं, मैंने चित्तौड़ से भी अपनी फ़ौजें वापस बुलाने के लिये हुक्म दे दिया है, और राना अपने देश पर फिर अधिकार कर ले, इस बात को गवारा किया है।

मानसिंह—सच है।

वदन०—जहाँपनाह, आपकी नीति और शुभ इच्छाएँ मुझे

ज्ञात न हों, सो बात नहीं है। (छाती ठोककर ज़ोर से) विश्वास रखिए कि यह राजपूत बच्चा कभी आपको धोखा न देगा, और इस देश को जीतकर आपके यश को उसी तरह बढ़ावेगा, जिस तरह और दूसरे जाति-हितैषी राजपूत राजा अब तक बढ़ाते आए हैं।

(मानसिंह की ओर देखता है)

अकबर—ठीक है ; आपसे ऐसी ही आशा है। इसी सिलसिले में मैं कुछ बातें और भी कहा चाहता हूँ। (आसफ़ख़ाँ से) हमारे मुसलमान सिपाही किसी मंदिर या पवित्र स्थान में पैर न रक्खें ; अगर कोई भूलकर भी मेरे प्यारे हिंदू-धर्म की तौहीन करे, तो उसी दम गोली से उड़ा दिया जाय।

आसफ़०—जो हुक्म, जहाँपनाह।

अकबर—दूसरी बात यह कि किसी तरह की लूट-पाट न की जाय; और न ज़रूरत से ज़्यादा ख़ून बहाया जाय। हम तो प्रजा के दुःख मेटने के लिये चढ़ाई कर रहे हैं, न कि उसका क़त्ल-आम करने के लिये। हम शांति चाहते हैं, अशांति नहीं; प्रेम के भूखे हैं, ख़ून के प्यासे नहीं। प्रजा-रूपी खंभों का नाश करके हम अपने हाथों अपने राज-भवन को मिट्टी में नहीं मिलाना चाहते।

आसफ़०—जो हुक्म, जहाँपनाह।

अकबर—और तीसरी बात यह है—इसे बहुत अच्छी तरह ध्यान में रखने की ज़रूरत है—कि महारानी दुर्गावती की तारीफ़ें सुनकर मुझे उनके दर्शन करने की प्रबल इच्छा हुई है।

इसलिये चाहे वह ख़ुद क़हर ढा रही हों, पर हमारी तरफ़ से, जहाँ तक हो सके; उनको ज़िंदा पकड़ने की कोशिश की जाय, और वह भी इस तरह कि उनके बदन में कोई हाथ न लगावे, सिवा उनकी बाँदियों के। उनके साथ बड़ा ही सम्मान-पूर्ण व्यवहार होना चाहिए। यदि इसके विरुद्ध हुआ, तो फिर समझ लीजिए कि मुझसे बुरा कोई नहीं है।

आसफ़०—जो हुक्म, जहाँपनाह।

अकबर—और क़िला सर हो जाने पर हमारा कोई सिपाही या अफ़सर अगर औरतों के हाथ भी लगावे, या ज़रा भी छेड़-छाड़ करे, या उनके धर्म का अपमान करे, तो फ़ौरन् मार डाला जाय। (बदनसिंह से) लड़ाई में मरे हुए सिपाहियों की औरतें अगर सती होना चाहें, तो उन्हें रोका जाय; मगर तरकीब से, बल-प्रयोग से नहीं।

बदन०—जो हुक्म, जहाँपनाह!

अकबर—(आसफ़ख़ाँ से) ख़ाँ साहब, महारानी की ख़ातिर और इज़्ज़त उतनी ही होनी चाहिए, जितनी कि उनके रुतबे को देखते हुए होना लाज़िमी है। क्या राय है आपकी?

आसफ़०—बिलकुल बजा है, जहाँपनाह। यह ख़ाकसार पूरा ख़याल रक्खेगा।

अकबर—(बदनसिंह और आसफ़ख़ाँ की ओर देखता हुआ) बस, अब आप लोगों से ज़्यादा कुछ कहना फ़िज़ूल है। आप मुझे जानते ही हैं; मेरे स्वभाव से भी पूरी जानकारी रखते हैं।

(दोनो हाथ जोड़कर गरदन झुकाते हैं) (तानसेन से) तानसेन, हमारी तरफ़ से इन्हें आशीर्वाद तो दे दो। फिर हम भी दरबार बरख़ास्त करें।

तानसेन—जो हुक्म, जहाँपनाह!

(गाना)

करें प्रभु सफल तुम्हारा काम,
सारे जग में यश छा जावे, फैले वर-वर नाम।
हों दुख दूर दीन-दुखियों के, पावें सब धन-धाम,
विजय प्राप्त कर शोभा पाओ, जैसे लछमन-राम।

छठा दृश्य

गढ़मंडल के पास एक स्थान

(राव गिरधारीसिंह के पुत्र घरबारीसिंह का प्रवेश)

घरबारी०—महारानीजी ने पिताजी को नज़र-क़ैद कर रक्खा है। अच्छा, देखा जायगा। अभी पिताजी से मुझे पता लगा है कि यह राज शीघ्र ही उलटनेवाला है, और इसके उलट जाने पर मुझको—क्योंकि पिताजी तो अब बूढ़े हो चले हैं—बड़ी अच्छी जगह मिलेगी। एक जागीर की जगह सौ जागीरें मेरे पैरों में मारी-मारी फिरेंगी। पिताजी का यह कहना बिलकुल सच है कि हमारे पुरखों ने अपने रक्त

से इस राज-रूपी पेड़ को सींचा था। मैं तो यों कहूँगा कि इस विष-वृक्ष को रोपा था; सो अब, जब कि यह बड़ा हो गया है, इसके फल भी हमें ही खाने पड़ रहे हैं! ठीक ही है। यदि ऐसा न हो, तो इस समय को कलजुग कोई क्यों कहे? मैं पूछता हूँ, कौन करता था प्रजा को तंग! यदि घड़ी-भर के लिये मान भी लें कि हम प्रजा को तंग करते थे, तो आप क्या हम लोगों—जागीरदारों—को तंग नहीं करतीं? प्रजा पशु नहीं है, तो आखिर हम भी तो पशु नहीं हैं। यदि प्रजा पर साम-दाम-दंड-भेद से शासन करनेवाले—या आपकी इच्छा हो, तो यों कह लीजिए कि उस पर मनमाना अत्याचार करनेवाले—किसी जागीरदार की जागीर छीन लेना अन्याय नहीं है, तो जागीरदारों को तंग करनेवाले राजा अथवा—जैसा अवसर हो—रानी का राज उलटवा देना भी अन्याय नहीं है। यही होना भी चाहिए। जिनकी छिन चुकी, उनकी छिन चुकी, औरों को सदा यह डबका लगा रहता है कि अब की बार कहीं हमारी जागीर न छिन जाय। वाह, क्या अच्छा प्रबंध है! प्रजा सुखी ही सही, सरदार लोग दुखी हैं, इसमें कोई संदेह नहीं। महारानीजी ने समझ लिया है कि यदि सरदार लोग संतुष्ट रहेंगे, तो प्रजा अप्रसन्न हो जायगी। ठीक है, यह तो होना ही है; पर देखना यह चाहिए कि लड़ाई के अवसर पर आपके काम कौन अधिक आता है। रुपए से, पैसे से, धन से, दौलत से बेचारे

जागीरदार ही तो पिसते हैं। बेगार में लोगों को पकड़-पकड़कर आपकी सेना के लिये रंगरूट देते हैं। तात्पर्य यह कि जितनी और जिस प्रकार हम लोग सहायता करते हैं, उतनी और उस प्रकार सहायता नोन, तेल, लकड़ी की चिंता में अधमरी रहनेवाली प्रजा नहीं कर सकती। भला सोचने की बात है कि यदि हम लोग प्रजा का कचूमर न निकालें, तो आपको हर साल कर कहाँ से दें? तेल तो तिली में से ही निकलेगा। एक से लिया जाता है, दूसरे को दिया जाता है। यदि आपको प्रजा के हित की ऐसी ही चिंता है, तो हमसे कुछ न लें; हम भी प्रजा से कुछ न लेंगे—सिवा नज़राने और बेगार के। राज को हमारा ही तो आधार है, और फिर हमारा ही अपमान किया जाता है! जिस डाल पर खड़े हो, उसी को काटना! (सोचता हुआ) परंतु ख़ूब होगा, जब ऊपर से मिले रहकर भी हम लोग भीतर से छुरी चलावेंगे। उस समय देखेंगे कि आपकी प्यारी प्रजा कहाँ तक और किस प्रकार आपका साथ देती है, और उसकी सहायता से आप इस राज की रक्षा करने में कैसे समर्थ होती हैं। सच बात तो यह है कि प्रजा है राज-रूपी रथ का घोड़ा, जागीरदार है चाबुक, और आप हैं हाँकनेवाले। भला, कहीं विना चाबुक के भी आज तक किसी ने सफलता-पूर्वक रथ हाँक पाया है? (सोचता हुआ) हाँ, क्या कहा था पिताजी ने? ठीक है। मैं अब जाकर ऊपर से महारानीजी की ख़ुशा-

मद करूँ, और उन्हें अपनी राजभक्ति पर विश्वास कराऊँ। ऐसे शुभ काम में देर करना ठीक नहीं, चलना चाहिए।

(जाता है ; दूसरी ओर से कुछ गँवारों का प्रवेश)

एक गंवार—अरे चौधरी हो ! देखा ? तभी तो मैंने कही थी कै महारानीजी के पास संदेसा भिजवाओगे, तो सब दुख दूर हो जायँगे।

दूसरा—देख लो, उन्होंने हमारे सब दुख मेट दिए, और हमारे जागीरदार की जागीर का प्रबंध अपने हाथ में ले लिया।

तीसरा—अरे भैया, राजा परमेस्वर का रूप है, जो बात झूठी थोड़े ही है।

चौथा—(एक ओर संकेत करके) देखो, सामने से कौन आ रहा है। (एक राजकर्मचारी का प्रवेश ; सबका एक ओर खड़ा होना)

कर्मचारी—भाइयो, हमारे राज पर अकबर बादशाह चढ़ाई करने आ रहा है; क्या तुम चाहते हो कि उसके दास बनो ?

गँवार—नहीं।

कर्मचारी—क्या तुम चाहते हो कि उसके सिपाही तुम्हारे खेतों, घरों और मंदिरों को उजाड़ दें, और उनमें आग लगा दें ?

गँवार—(क्रोध से) नहीं, कभी नहीं।

कर्मचारी—क्या तुम चाहते हो कि वे तुम्हारी बहन-बेटियों का सतीत्व बिगाड़कर उन्हें विधर्मी बना लें ?

गँवार—(क्रोध से) कभी नहीं, कभी नहीं।

कर्मचारी—क्या तुम चाहते हो कि तुम्हारे इस प्यारे देश का प्रबंध महारानीजी के हाथ से निकलकर तुमसे तनिक भी सहानुभूति न रखनेवाले विधर्मी विदेशियों के हाथ में चला जाय?

गँवार—कभी नहीं, कभी नहीं।

कर्मचारी—क्या तुम चाहते हो कि तुम और तुम्हारी संतान दासता की बेड़ियों में जकड़ी जाय, और पराधीनता के दुःख भोगा करे?

गँवार—कभी नहीं, कभी नहीं।

कर्मचारी—तो क्या तुम विदेशियों के हमले से अपने प्यारे देश की रक्षा करना अपना कर्तव्य समझते हो?

गँवार—(एक दूसरे की ओर देखते हुए) हाँ, क्यों नहीं।

कर्मचारी—जिन महारानीजी ने तुम्हारे साथ अनगिनती उपकार किए हैं, लड़ाई में उन्हीं की जीत हो, क्या तुम यह चाहते हो?

गँवार—हाँ, चाहते हैं।

कर्मचारी—क्या तुम विदेशियों के पंजे से अपनी स्वतंत्रता, अपने सुख, अपने घर, अपने भाई-बंधु, अपने खेत और अपने मंदिरों की रक्षा करके संसार में अपनी बात बनाए रखना चाहते हो?

गँवार—हाँ।

कर्मचारी—तो क्या तुम लोग अपनी मातृ-भूमि के लिये अपने प्राण तक देने को तैयार हो ?

(गँवार एक दूसरे के कानों में 'प्रान तक ?', 'प्रान तक ?' कहते हैं)

कर्मचारी—(ज़ोर से) बोलो, क्या तुम लड़ाई में मर्दों की तरह तलवार पर खेलना पसंद करते हो, या घरों में गाजर-मूली की तरह विदेशियों के हाथों काट दिए जाना ? बोलो।

(गँवार आपस में कानाफूसी करते हैं)

कर्मचारी—अरे भलेमानुसो, क्या सोच रहे हो ? बतलाओ, तुम्हें गाजर-मूली की भाँति अपनी गरदन कटवानी है, या वीरों की भाँति नामवरी के साथ मरकर स्वर्ग जाना पसंद है।

एक गँवार—नामवरी के साथ—

दूसरा—सरग में जाना—

तीसरा—वीरों की भाँति—

चौथा—हाँ, मरकर—

कर्मचारी—ठीक है ; सोचने की बात है, यदि अधर्मी लोग तुम्हारे देश के राजा हो गए, तो वे तुम्हें भेड़-बकरियों की तरह रक्खेंगे, तब तुम क्या करोगे ?

(गँवार एक दूसरे से 'क्यों भई, तुम क्या करोगे ?', 'क्यों भाई, तुम क्या करोगे ?' कहते हैं)

कर्मचारी—मैं तुमसे एक बात पूछता हूँ। मुग़ल और तुर्क तुम्हारी स्त्रियों को भगाकर ले जायँगे, तुम्हारी संपदा लूट लेंगे,

तुम्हारी गउओं को भी मार कर खा जायँगे—(गँवारों का क्रोध से तमतमा उठना)

गँवार—ख़बरदार ? बस यही बात न कहिए, राम-राम—

कर्मचारी—तुम्हारे खेतों को जला डालेंगे, तब तुम क्या करोगे ?

गँवार—हम उनका भुरता कर देंगे।

कर्मचारी—तो फिर, भाइयो, आओ, श्रीमहारानीजी की सेना में अपना नाम लिखाओ, और उन धर्म के शत्रुओं से लड़ने के लिये अपने हाथ में तलवार पकड़ो। जिस समय तुम हथियार लेकर शत्रु की सेना में घुस पड़ोगे, उस समय उसके छक्के छूट जायँगे, और वह भागती ही दीखेगी। भला कहाँ धर्म के पीछे सिर कटानेवाले तुम, और कहाँ वे लुटेरे! जिधर धर्म होता है, उधर ही जीत होती है—जैसी महाभारत की लड़ाई में हुई थी। क्यों, याद है ? कभी सुनी है ? (गँवार 'हाँ' कहते हैं) बस, तुम उन लोगों का सब माल लूटकर अपने घर में रखना।

गँवार—(एक दूसरे की ओर देखते हुए) है तो डौल मजे का।

कर्मचारी—तुम्हें और तुम्हारे बाल-बच्चों को भी महारानीजी की ओर से इनाम मिलेगा, जागीरें मिलेंगी। यदि मारे गए, तो स्वर्ग मिलेगा। बोलो, क्या कहते हो ?

एक गँवार—जे तौ पुन्न का काम है, बहुत अच्छा है। 'आम के आम और गुठलियों के दाम' (सब 'बहुत अच्छा है', 'बहुत अच्छा है' कहते हैं)

दूसरा—जिए मिले सम्मान, मरे मिलेगा सरग-सुख,
ले लो तीर-कमान, अब तो अपने देश-हित।

(सब गाते और कूदते जाते हैं)

(गाना)

पहनो अब केसरिया बाना,
ले तरवार जुद्ध में मरना, रिपु को मार हटाना।

एक—उसको दूर खदेड़ेंगे हम,
दूसरा—उसकी खाल उधेड़ेंगे हम,
सब—लूटबाट उसकी धन-संपत अपने घर में लाना। पहनो०—
तीसरा—जो जीते, तौ जनम सुधारा,
चौथा—मरने पै है सरग हमारा,
सब—लड़ने से दोनो हाथों में होगा लड्डू पाना। पहनो ०—

(जाते हैं)

सातवाँ दृश्य

स्थान—राज-प्रासाद का एक भाग

(भगेलूसिंह, घरबारीसिंह, छिपेलूसिंह आदि सरदारों के साथ दुर्गावती)

दुर्गावती—ऐसी दशा में, आप लोग ही सोचिए, हमारा कर्तव्य क्या है? हम क्षत्री हैं, क्या शत्रु के सामने पीठ दिखाना हमें शोभा देगा?

सरदार—कभी नहीं, कभी नहीं।

दुर्गावती—और फिर मैं तो किसी से लड़ने जा नहीं रही हूँ; वे लोग स्वयं ही, विना किसी कारण, मेरा देश लूटने, मेरी प्रजा की स्वतंत्रता छीनने और उसका सब तरह से सत्यानाश करने आ रहे हैं।

सरदार—निस्संदेह।

दुर्गावती—मैं अच्छी तरह जानती हूँ कि दो-एक जयचंद के अवतार उनमें जा मिले हैं; और जिस मातृभूमि की गोद में पलकर वे इस योग्य हुए हैं कि हथियार पकड़ सकें, उसी की गरदन उड़ाने पर तुले हुए हैं।

सरदार—खेद है, खेद है।

दुर्गावती—हाँ, खेद अवश्य है, परंतु ऐसा सदा से होता आया है। हिंदुओं के जितने राज अब तक नष्ट हुए हैं, सब घर ही की फूट के कारण; और अंत में उन घर के भेदियों को भी कुछ सुख नहीं मिला। परंतु क्या किया जाय, मनुष्य अपनी दुर्बल प्रकृति से लाचार है। घरवालों को खाकर, उनका नाश कराकर, जो लोग सुखी होने का स्वप्न देखते हैं, वे उस कुम्हार के सदृश मूर्ख हैं, जो अपनी मिट्टी को मिट्टी में मिलाकर लखपती बनना चाहे। मुझे अपने नाशवान् शरीर के लिये अपकीर्ति के साथ सुख प्राप्त करने की तनिक भी इच्छा नहीं है। यह तो छुटेगा ही—दो दिन आगे या पीछे। मुझे तो यश प्यारा है, जो सदा बना रहे। क्षण-भंगुर धन, धाम और वैभव से मुझे मोह नहीं है। मैं क्षत्राणी हूँ, और बचपन

से ही मैंने कायरता से घृणा करना सीखा है। मुझे वीरता-पूर्वक इस शरीर के टुकड़े-टुकड़े कराकर मरना पसंद है; किंतु कायर कहलाकर, अपमानित कुत्ते की तरह दुम हिला-कर, इस राज्य के अथवा सारे संसार के राज्य-रूपी रोटी के टुकड़े को माँगने के लिये अकबर तो क्या, साक्षात् ईश्वर की भी खुशामद करना स्वीकार नहीं है।

(क्रोध से सीधा पैर दे मारती है)

सरदार—सच है, सच है, महारानीजी सच है।

दुर्गावती—सरदारो,

हमारा काम है स्वाधीनता के ही लिये मरना,
रहें स्वाधीन जब तक, बस तभी तक देह को धरना;
तनिक से स्वार्थ के कारण जो बनकर दास रहते हैं,
वे जीते ही मरे हैं, दासता के दुःख सहते हैं।

सरदार—सच है, महारानीजी, सच है।

दुर्गावती—

जहाँ चलती हों तलवारें, जहाँ भाले चमकते हों,
जहाँ कट-कटके सिर रण-कांति से दूने दमकते हों;
उसी तीरथ में मरना क्षत्रियों का धर्म पावन है,
वही है मोक्ष का पथ, स्वर्ग का सीधा-सा साधन है।

एक सरदार—(प्रणाम करता हुआ) श्रीमहारानीजी,

भला इस स्वर्ग को तजना कहाँ की बुद्धिमानी है,
कि कायरता का जीवन तो निरी झूठी कहानी है।

दूसरा—(प्रणाम करता हुआ) श्रीमहारानीजी, अकबर को दल-बल-सहित चढ़ आने दीजिए—

पतंगा आग में गिरता, जब उसकी मौत आती है,
नहीं उसको जलाने आग उसके पास जाती है।

तीसरा—(सरदारों से)

भला जब शेर को छेड़ो, तो क्योंकर चुप रहेगा वह,
किसी की ऐंठ को चुपचाप क्यों, कबतक, सहेगा वह ?
स्वयं अकबर ने बैठे-ठाले हमसे छेड़खानी की,
भला फिर हम भी रण में क्यों न जय बोलें भवानी की ?

चौथा—(सरदारों से)

नदी अकबर की सेना है, डुबाती जो रही गागर,
हमारे वीरता - सागर से क्या जीतेगी टकराकर !
कि जैसे ही भिड़ेगी ऐंठ से बल से यहाँ आकर,
तो गुम हो जायगी, रह जायगी अस्तित्व मिटवाकर।

दुर्गावती—

यही आज्ञा है मेरी, मेरे सैनिक शत्रु को रोकें,
लगाई अग्नि जो उसने, उसी में उसको धर झोंकें।
न जो सीसोदियाओं को मिला, वह यश मिले हमको,
भगावें हम सदा को मौत का भय मारकर यम को।

(रानी का प्रस्थान; सबका जाना)

तीसरा अंक

पहला दृश्य

स्थान—युद्ध-भूमि का एक भाग

(महारानी दुर्गावती और सुमति)

दुर्गावती—(एक ओर दिखाकर) सुमति, देखो, हमारे सेनापति और सरदारों के पराक्रम के प्रवाह में ये आसफ़ख़ाँ के सिपाही कैसे तिनके-से बहे चले जा रहे हैं !

सुमति—(दूसरी ओर संकेत करती हुई) महारानीजी, यह देखिए, इधर से बादशाही सेना ने फिर धावा किया । (भय और आश्चर्य के साथ) देखिए, देखिए, वह तो बढ़ती ही चली आ रही है, और हमारी सेना भाग रही है !

दुर्गावती—नहीं सुमति, वह बढ़ नहीं सकती ! यह तो सब वीरनारायण ने उनको फँसाने के लिये चालाकी की है। तुम स्वयं देख लेना कि बादशाही सेना की अभी क्या दशा होती है।

सुमति—वह देखिए, हाथी पर चढ़ा आसफ़ख़ाँ और—

(क्रोध, घृणा और लज्जा से गरदन नीची कर लेती है)

दुर्गावती—हाँ, मैं देख रही हूँ कि बदनसिंह और आसफ़ख़ाँ

अपने सिपाहियों को उत्साह दिलाते हुए इधर की ओर ला रहे हैं।

सुमति—इधर हमारे कौन-कौन-से सरदार लड़ रहे हैं ?

दुर्गावती—इधर सुमेरसिंह और मंत्री अधारसिंह हैं।

सुमति—वह देखिए, मैदान ख़ाली देखकर शत्रु इधर की ओर बढ़ा चला आ रहा है, क्या यहाँ कोई भी सरदार नहीं ?

दुर्गावती—सुमति, वहीं वीरनारायण की सेना छिपी हुई है। जब शत्रु ख़ूब आगे बढ़ आवेगा, तब वीरनारायण तीन ओर से घेरकर उसका संहार करेगा।

सुमति—देखिए, वह भैया और मंत्री की सेना ने उधर शत्रु के दूसरे हमले को रोका।

दुर्गावती—नहीं, शत्रु को पीछे हटाया। ध्यान से देखो, अपने सिपाहियों की बलि देता हुआ शत्रु कैसा एक-एक डग पीछे हट रहा है, जैसे किसी सिंह के सामने गुर्राता हुआ, किंतु सहमा हुआ, दूसरा सिंह पीछे हटता है।

(बड़े ज़ोर का धड़ाका होता है)

सुमति—(चौंककर, चकित होकर, हर्ष से) यह देखिए, अरे ! कुँवर साहब के सिपाही टीड़ी-दल की तरह किधर से निकल पड़े !

दुर्गावती—(हर्ष से) वह देखो, वीरनारायण ने तीनो ओर से शत्रु को घेर लिया। शत्रु भागना चाहता है; किंतु भाग नहीं सकता, क्योंकि घबरा गया है।

सुमति—कैसे सकपकाकर भागते हैं! वाह-वाह, धन्य क्षत्रिय-कुल-तिलक! तुझे धन्य है!!

दुर्गावती—और इधर देखो, आसफ़खाँ और वदनसिंह ने मंत्री सुमेरसिंह के सिपाहियों को दवाया।

सुमति—(देखती हुई, दुखी होकर) हाय-हाय, (इधर-उधर देखकर) क्या करूँ, (आप-ही-आप) हे भगवन्, मुझे विधवा होना स्वीकार है, परंतु देश की लाज न जाय।

दुर्गावती—सुमति, देखो वीरनारायण ने बादशाही सेना को खदेड़ दिया।

सुमति—(चिंता के साथ) हाँ, किंतु महारानीजी, आसफ़खाँ—

(दुर्गावती का सीटी बजाना और एक सिपाही का आना)

सिपाही—आज्ञा? महारानीजी, आज्ञा?

दुर्गावती—कुँवर साहव से कहो कि भागते हुए शत्रु के पीछे आधे सिपाहियों को भेजें, और आधी सेना को साथ लेकर आसफ़खाँ के सिपाहियों पर स्वयं वाईं ओर से हमला करें, और सो भी इस वेग से कि भाले, बर्छियाँ, तलवारें, तलवारें नहीं; एकदम कटारें चलने लगें। खूब भिड़कर लड़ाई करें।

सिपाही—जो आज्ञा। (जाता है)

सुमति—कुँवर साहव को आपने कैसी भीषण आज्ञा दी है। (देखकर) ओह, फूल-जैसा बालक वज्र-जैसी कठोरता से लड़ रहा है!

दुर्गावती—बड़े भाग्य से यह अवसर उसे मिला है। इस लड़ाई में उसे ख़ूब अनुभव प्राप्त हो जायगा। ऐसा होना आवश्यक भी है, क्योंकि अब उसे ही इस राज का भार सँभालना है। अब तक बंदूक़ों, तीरों और तलवारों की ही लड़ाई होती रही है, जिस समय छुरियाँ और कटारें चलने लगें, उस समय शत्रु की सेना की दशा देखना।

सुमति—वह देखिए, कुँवर साहब आपके आदेश के अनुसार आसफ़ख़ाँ की बाईं ओर आने के लिये चल पड़े।

दुर्गावती—हाँ, बस अब लड़ाई का अंत होने में पाव घंटा और समझो।

सुमति—(अचरज से) सो कैसे?

दुर्गावती—मार तो थोड़ी ही देर की बुरी होती है, परंतु संभव है, आसफ़ख़ाँ के खिसियाए हुए सिपाही कुछ देर तक और डटे रहें।

सुमति—और तब?

दुर्गावती—तब वे बुरी तरह भाग खड़े होंगे; हमारे सिपाही उनका पीछा करेंगे, और उनके सब सामान पर अधिकार जमाते हुए उन्हें दस-बारह कोस परली तरफ़ खदेड़ आवेंगे। इस झगड़े में उनकी आधी सेना कट जायगी।

सुमति—(एक ओर देखती हुई, हर्ष से) वह देखिए, कुँवर साहब के हमले से दबकर शत्रु की सेना भाग खड़ी हुई।

अहाहा ! यह खूब हुआ !! यह देखिए, सेना को पीछा करने की आज्ञा देकर कुँवर साहब इधर ही आ रहे हैं।

दुर्गावती—(उस ओर देखती हुई अचरज से) हैं ! सिपाही पीछा क्यों नहीं करते !! अवश्य कुछ दाल में काला है !!!

(वीरनारायण का प्रवेश और दुर्गावती के पैर छूना; दुर्गावती का उसके सिर पर हाथ रखकर उसे छाती से लगाना और प्रेम के आँसू पोंछना)

वीर०—माताजी, शत्रु की सेना को खदेड़कर मैंने सिपाहियों को पीछा करने की आज्ञा दी, किंतु उन्होंने मेरी आज्ञा नहीं मानी।

दुर्गावती—नहीं मानी ! क्यों ? यह जानकर भी कि तुम आज्ञा दे रहे हो, उन्होंने नहीं मानी ?

वीर०—हाँ। कुछ ने मानी भी, परंतु औरों को पीछा न करते रखकर वे भी लौट आए।

दुर्गावती—इसका कारण ? (सीटी बजाती है; सिपाही का प्रवेश; सिपाही से) मंत्रीजी को तुरंत भेजो।

सिपाही—जो आज्ञा। (जाता है)

वीर०—कारण मेरी भी समझ में नहीं आता। आया हुआ मैदान हाथ से निकला जाता है। तो मैं अब अकेला ही शत्रु का पीछा करता हूँ। (जाने लगता है)

दुर्गावती—ठहरो, तनिक मंत्री को आने दो। यह ह[illegible] रहा ? (घायल सुमेरसिंह और मंत्री का आना और प्रणाम करना; उन दोनो से) मैं आपकी वीरता की कहाँ तक बड़ाई करूँ। सच बात तो यह है कि यह विजय आप ही की रण-कुशलतासे प्राप्त

हुई है। (दोनो सिर झुकाते हैं) परंतु वीरनारायण की सेना के सिपाही यह क्या कर रहे हैं?

सुमेर०—महारानीजी, खेद है, हम लोगों की सेना के सिपाही भी आज्ञा मानने में आनाकानी कर रहे हैं!

दुर्गावती—(अचरज से) अरे! इसका क्या कारण? क्या राजपूतों में से मातृभूमि का प्रेम, स्वाधीनता का गर्व और स्वामि-भक्ति का भाव आज सहसा लुप्त हो गया?

मंत्री—मेरी राय तो यह है कि हमारे कुछ सरदार पहले से ही उधर मिले हुए हैं, और वे अपने सिपाहियों को ही नहीं, दूसरे सिपाहियों को भी पीछा करने से रोकते हैं।

सुमेर०—नए सिपाहियों में से तो अधिकतर ऐसे हैं, जिन्होंने हथियार चलाया ही नहीं।

दुर्गावती—ये नए सिपाही कौन-से हैं और कहाँ के हैं?

सुमेर०—महारानीजी, इन नए सिपाहियों की भरती लड़ाई से केवल दो महीने पहले आरंभ हुई थी। इन सिपाहियों ने अपने को आपकी ही प्रजा बतलाया और सेना में भरती होने के लिये विशेष उत्साह दिखलाया था। परंतु अब मुझे संदेह होता है कि भरती करनेवालों ने धोखे से शत्रु के आदमियों को अपना समझ लिया।

दुर्गावती—(सोचती हुई) ठीक है, समझ गई। शोक! अंधाधुंध भरती करने का ही यह परिणाम हुआ। ख़ैर, आगे के लिये शिक्षा मिली। किंतु अब देर करने का समय नहीं है।

जो सिपाही पीछा करने को तैयार हों, उन्हीं को लेकर पीछा किया जाय और यह घोषणा करा दी जाय कि जो कोई जितनी वीरता दिखावेगा, उसको उतना ही अधिक पारितोषिक दिया जायगा।

सुमेर० और मंत्री—जो आज्ञा। (दोनो का जाना; वीरनारायण भी जाता है)

सुमति—(चिंता के साथ) महारानीजी, ऐसी बात तो कभी सुनने में भी नहीं आई थी, जो आज यहाँ देखी जा रही है।

दुर्गावती—(सोचती हुई, शोक से) किसी के जाल में फँस गए हैं; लालच का पर्दा बुद्धि पर पड़ गया है। जल्दी में, घर-बार का पता जाने विना, शत्रु के आदमी भरती कर लिए गए हैं। सरदारों में से कितने ही बागी हो गए हैं। आई हुई विजय हाथ से जाती दीखती है।

सुमति—न जीतें, अभी तो शत्रु को भगा देने से ही काम चल जायगा।

दुर्गावती—सुमति, जो लौट-लौटकर हमला करे, उस रोग और शत्रु को भागा नहीं कह सकते। (क्रोध और आशा से) बस, अब एक ही उपाय सूझता है; मैं स्वयं जाकर आज्ञा दूँ।

सुमति—हाँ, ठीक है, चलिए। (दोनो जाती हैं)

(राव गिरधारीसिंह का प्रवेश)

राव—(आप-ही-आप, हँसता हुआ) मैंने भी महारानी की सेना में वह गड़बड़ मचवा दी है कि सिपाही शत्रु का पीछा

ही नहीं कर रहे हैं। मैंने कहा, शत्रु का तोपखाना आगे लगा हुआ है, तुमने पीछा किया और उसने तुम्हें, विना नाम पूछे, भूना! शत्रु भाग नहीं रहा है, बल्कि चालाकी से तुम्हें तोपखाने की मार तक ले जाना चाहता है!! एक ही वाढ़ में सफ़ाया हो जायगा। बस, बनावटी सिपाहियों ने जो जाने से इनकार किया, तो असली सिपाहियों के भी जी टूट गए। किसी ने सच कहा है कि ख़रबूज़े को देखकर ख़रबूज़ा रंग बदलता है। अब देखूँ, किस तरह महारानी लड़ाई जीते लेती हैं।

(एक बादशाही सिपाही का प्रवेश)

सिपाही—अबे बुज़दिल, नमकहराम, लड़ाई से भागकर अपनी जान बचाना चाहता है! तूने ही मेरे भाई को क़त्ल किया है। बहुत देर से तुझको ढूँढ़ता फिरता हूँ। मुझे क़ैद हो जाने या मारे जाने का ख़ौफ़ नहीं है, सिर्फ़ तेरे ख़ून का प्यासा हूँ।

राव०—(घबराकर हाथ जोड़ता हुआ) अजी, मैं तो तुम्हारी ही तरफ़ हूँ। (सिपाही का तमंचा साधना) हैं! हैं!! (राव का पीछे हटना) ज़रा पूछो तो सही ख़ाँ साहब या राजा साहब से।

सिपाही—अब साला हमें अक़्ल बताता है। यहाँ छिपकर बातें बनाता है।

राव०—अजी, अजी—(सिपाही का तमंचा दाग़ना; राव का मरकर गिरना; सिपाही का दो ठोकरें मारते हुए चला जाना)

(दुर्गावती और सुमति का प्रवेश)

दुर्गावती—धोखा तो पूरा ही हुआ है, पर तो भी मैं अभी निराश नहीं हुई हूँ। क्या इतने क्षत्रियों में थोड़े-से भी ऐसे न निकलेंगे, जो अंत तक अपने धर्म पर डटे रहना पसंद करें? शत्रु डर के मारे बहुत दूर भाग गया है। अब की बार वह बड़ी भारी तैयारी के साथ आवेगा। तब तक हमें भी तैयार हो जाना चाहिए।

सुमति—ठीक है, (रावजी की लाश देखकर) परंतु महारानीजी, यहाँ पर यह कौन वीर सदा के लिये सो रहा है?

दुर्गावती—(झुककर देखती हुई, क्रोध और घृणा के साथ) यह वीर नहीं, परले सिरे का कायर है, जो अपने कर्मों को रोता हुआ इस संसार से कूच कर चुका है—

चढ़ा जिसका नशा सबको, वो मद इसने पिलाया है,
इसी ने लहलहाते पेड़ को जड़ से हिलाया है।

सुमति, इसी की नीचता से आज मेरी सेना बिगड़ी है। मैंने सचमुच बड़ी भूल की, जो इसको आधा सिड़ी समझ-कर अब तक जीवित रहने दिया। यदि इस देश-द्रोही को मैं पहले ही इस संसार से बिदा कर देती, तो आज हमारी प्यारी स्वाधीनता को मेरे रहते, यहाँ यों प्राणों के लाले न पड़ गए होते।

सुमति—(ध्यान से देखती हुई) किंतु यह है कौन? महा-रानीजी, मैं अभी इसे ठीक-ठीक नहीं पहचान सकी। इसे कहीं

देखा तो पहले अवश्य है। और इस प्रकार इसे मार कौन गया?

दुर्गावती—यह वही राव गिरधारी है, जिसने वदनसिंह से मिलकर (सुमति लज्जा और घृणा से मुँह नीचा कर लेती है) मेरे सरदारों और सिपाहियों को बहका दिया है। इतने दिनों से भागा हुआ था, आज यहाँ देख पड़ा है। खेद है, मैं इसे अपने हाथों न मार पाई।

(घायल और बेहोश वीरनारायण का सिपाहियों द्वारा लाया जाना)

एक सिपाही—(प्रणाम करता हुआ) कुँवर साहब घायल हुए हैं, श्रीमहारानीजी।

दुर्गावती—(देखती हुई) समझ गई। (वीरनारायण की पीठ देखती हुई) प्यारे पुत्र, (स्नेह के आँसू पोछती हुई) आज मैं धन्य हुई; जो मैंने तुझे इस दशा में देखा। हर्ष की बात है कि पीठ में घाव न खाकर तूने मेरे दूध की लाज रक्खी। सुमति, अपने आँसू पोंछ। (सिपाहियों से) इन्हें गढ़ में ले जाओ, मरहम-पट्टी का प्रबंध करवाओ। (सुमति से) अब तक मैंने स्वयं हथियार उठाने की आवश्यकता नहीं समझी थी, किंतु अब ऐसा करना आवश्यक है। (जाना, सुमति का पीछे-पीछे जाना)

एक सिपाही—(राव० की लाश को देखता हुआ अचरज से) अरे, एक क्षत्री यह पड़ा है!

दूसरा—चलो, इसके भी शव को लेते चलें, और गति करा दें।

सिपाही—ठीक है—(राव० की लाश को ले जाना)

(दूसरी ओर से आसफ़ख़ाँ और बदनसिंह का प्रवेश)

आसफ़०—राजा साहब, और मज़ा यह कि हारी हुई बाज़ी जीत ली !

बदन०—यह सब राव साहब की करामात है, जिन्होंने सरदारों को मिलाकर सेना को बहकवा दिया।

आसफ़०—(घृणा के साथ बदनसिंह की ओर देखता हुआ) इसमें क्या शक है; इसका उनको काफ़ी तौर से इनाम दिलवाया जायगा।

बदन०—अवश्य ऐसा ही होना चाहिए।

आसफ़०—लेकिन अभी रानी की ताक़त कुछ ऐसी घटी नहीं है।

बदन०—जी हाँ—(कुछ हल्ले-गुल्ले की आवाज़ सुनकर और उस ओर देखकर आसफ़ख़ाँ को दिखलाता हुआ) देखिए, उधर फिर हमला हुआ। माॡम होता है, महारानी स्वयं उधर जा पहुँची।

आसफ़०—अब एक नहीं, हजार महारानियाँ पहुँचा करें, तो भी कुछ नहीं हो सकता; क्योंकि अब तो उधर तोपख़ाना लगवा दिया गया है, जिससे ये लोग उसी तरह भून डाले जायँगे, जिस तरह भाड़ में चने भूने जाते हैं। तोपख़ाने के आने में देर हुई, इसीलिये पहली बार मैदान हमारे हाथ से निकल गया था; वरना भला कोई बात थी !

बदन०—परंतु तो भी हम लोगों का वहाँ उपस्थित रहना आवश्यक है।

आसफ़०—आइए, चलें।

(दोनो का एक ओर जाना; दूसरी ओर से मंत्री और सुमेरसिंह की लाशें लिए गाते हुए कुछ सिपाहियों का आना)

सिपाही—

(गाना)

चले तजकर स्वदेश-हित प्रान,
स्वतंत्रता-देवो के सम्मुख कर अपना बलिदान।
छोड़ चले यश यहाँ, ले चले देवों-सा सम्मान,
सब वीरों को ऐसी ही दे सुगति सदा भगवान।

(एक ओर जाना; दूसरी ओर से दुर्गावती और सुमति का प्रवेश)

दुर्गावती—सुमति, मंत्री और तुम्हारे भाई ने वीर-गति पाई, परंतु फिर भी काम न बना।

सुमति—महारानीजी, मुझे आज बड़ा हर्ष है कि मेरे भाई ने वीर-गति पाई। मंत्रीजी के सिधारने का मुझे शोक है, क्योंकि वह—

दुर्गावती—(बीच ही में) हाँ, वह इस राज्य-रथ के चक्र थे। किंतु सुमति, जो कुछ हो रहा है, उसे देखते हुए भी मैं अभी निराश नहीं हूँ; बल्कि मेरा साहस और भी बढ़ रहा है; क्योंकि दिया। (सुमति से) आपके दोनो बालक क़िले में अच्छी तरह

अब इस राज्य की रक्षा करने का भार एकमात्र मेरे ऊपर आ पड़ा। इस सुंदर भवन के दो मुख्य स्तंभ टूट चुके हैं, अब सारा दारमदार मुझी पर है। आसफ़ख़ाँ की तोपों से डरकर कायर लोग भाग गए हैं, किंतु अब मैं (इशारे से दिखाती हुई) उस घाटी के पीछे अपनी सेना खड़ी करूँगी, और वहीं से तोपों का सामना करूँगी। यह निश्चय है कि जब तक मेरे तन में प्राण हैं, तब तक शत्रु मेरे देश पर अधिकार नहीं जमा सकता। यदि पहले ही पीछा करके हल्ला बोल दिया जाता, तो सब तोपें हमारे हाथ आ गई होतीं, परंतु देश-द्रोही और विश्वासघातियों की करतूतों से ऐसा नहीं किया जा सकता; उसी का यह परिणाम है। विधाता को यही स्वीकार था। अपने जीवन में पहलेपहल यहीं मैंने सिंहों को गीदड़ों की तरह भागते देखा है। भगवान् फिर मुझे यह दृश्य न दिखावे!

सुमति—महारानीजी, उधर कुँवर साहब की वह दशा है—

दुर्गावती—वह दशा कुछ ऐसी नहीं है, जिसका सोच किया जाय। परमात्मा उनकी रक्षा करेगा। वह वीर की भाँति घायल हुए हैं, कायर की भाँति नहीं।

सुमति—श्रीमहारानीजी, सरदार निकम्मे साबित हुए, और मंत्रीजी के न रहने से अब कोई भी ऐसा नहीं रहा, जिससे परामर्श लिया जा सके।

दुर्गावती—तुम्हारा कहना ठीक है कि अब कोई भी ऐसा नहीं रहा, जिसके साथ बैठकर कुछ परामर्श किया जा सके।

जब तक मंत्री होते हैं, तब तक साम, दाम, दंड, भेद चारो को ध्यान में रखते हुए किसी बात का निर्णय किया जाता है, किंतु अब तो केवल दंड ही का आश्रय लेना है। अब या तो गढ़मंडल की स्वाधीनता मेरे हाथों बचती है, और या मेरे प्राणों के साथ सदा के लिये जाती ही है।

(गई; पीछे-पीछे सुमति का जाना)

दूसरा दृश्य

स्थान—युद्ध-भूमि का दूसरा भाग, घाटी के पीछे

(कुछ सिपाही बातचीत कर रहे हैं)

एक सिपाही—अब तो यही स्थान ठीक रहेगा।

दूसरा—यहाँ से हम लोग अच्छी तरह गोली चला सकेंगे।

तीसरा—और यहाँ शत्रु के गोले हमारा कुछ बिगाड़ भी न सकेंगे।

चौथा—तो आओ, अपना-अपना मोर्चा ठीक करो।

सब—हाँ, आओ। (एक ओर गए)

(दूसरी ओर से कुछ सिपाहियों के साथ दुर्गावती का प्रवेश)

दुर्गावती—वीरो, डरने की कोई बात तो थी नहीं; यदि आप लोग चाहते, तो शत्रु का तोपखाना पहले ही छीन लेते। किंतु अब क्या होता है ! जो होना था, हो गया। उसका सोच करना अब व्यर्थ है। फिर भी मुझे पूरी आशा है कि विजय मेरी ही होगी; क्योंकि धर्म मेरी ओर है। अब मैं तुम्हें आज्ञा

देती हूँ कि यहाँ इस घाटी में, मेरे और सिपाहियों की भाँति तुम भी अपना मोर्चा साधकर युद्ध करना आरंभ करो। शत्रु का तोपखाना यहाँ तुम्हारा कुछ भी न बिगाड़ सकेगा, और तुम्हारी एक-एक गोली से एक-एक शत्रु का मारा जाना निश्चित है। जब तुम्हारी भयंकर मार से शत्रु घबराएगा, तब मैं स्वयं बाईं ओर से उस पर हल्ला करूँगी, और तोपखाना छीन लूँगी। उस समय तोपों का मुँह वह मेरी ओर इतनी शीघ्रता से फेर ही न सकेगा; किंतु यदि फेर भी ले, तो तुम इस घाटी को पार करके बगल से हमला करना। बस, विजय निश्चित है।

सिपाही—जो आज्ञा श्रीमहारानीजी की।

दुर्गावती—क्षत्रियों की लड़ाई में इस प्रकार पीठ दिखाते हुए मैंने पहले कभी नहीं देखा था, किंतु यद्यपि मंत्रीजी के साथ हमारे नामी-नामी योद्धा भी स्वर्ग की राह ले चुके हैं, तो भी मुझे पूरा विश्वास है कि विजय हमारी ही होगी; क्योंकि हमें धर्म का बल, जो सबसे बड़ा और परमात्मा का बल है, प्राप्त है।

सिपाही—निस्संदेह।

दुर्गावती—वीरो, कुछ देकर ही कुछ लिया जाता है; और जितना अधिक दिया जाता है, उतना ही अधिक उसके बदले में प्राप्त भी होता है। हमारे मंत्री सेनापति और रणबाँकुरे सरदारों तथा प्राणों से प्यारे, अपने देश की रक्षा के लिये अपना तन-मन-धन निछावर करनेवाले, न-जाने कितने वीरों की भेंट रणचंडी ले चुकी है; इसलिये उनको पाकर तृप्त

हुई वह अवश्य हमें विजय प्रदान करेगी; इसमें कुछ संदेह थोड़े ही है।

सिपाही—सच है, श्रीमहारानीजी, सच है।

दुर्गावती—वीरो, हमें अपनी स्वाधीनता की रक्षा करनी है; सब कुछ देकर भी हमें अपनी प्यारी प्रजा को दासता की बेड़ियों में जकड़े जाने से बचाना है। हमें कट मरना स्वीकार है, किंतु दास बनना स्वीकार नहीं। माना कि हमारे पास शत्रु-जैसा तोपख़ाना नहीं है; किंतु फिर भी उससे कहीं बढ़कर आत्मिक बल नाम का ईश्वरीय तोपख़ाना तो है—अच्छे उद्देश्य पर मर-मिटने का, वज्र-जैसा दृढ़, संकल्प तो है।

सिपाही—अवश्य, श्रीमहारानीजी !

दुर्गावती—वीरो, यह देह नाशवान् है, और सो भी ऐसी कि एक बार छोड़ देने से बार-बार मिल जाती है। अतएव अच्छे उद्देश्य की पूर्ति के लिये इसे छोड़ने को सदा तत्पर रहना चाहिए।

सिपाही—अवश्य-अवश्य।

दुर्गावती—वीरो, कायर बनकर बदनामी के साथ जीने और दुनिया में अपनी हँसी कराने से यश प्राप्त करके मर जाना कहीं अच्छा है। इसीलिये मैंने निश्चय कर लिया है कि इस देश की स्वतंत्रता की रक्षा के लिये मैं अपने प्राण होम दूँगी। अगर अपने इस प्यारे देश की स्वतंत्रता की रक्षा आप लोग कर सकें, तो इतिहास में आपका नाम अमर हो

जायगा। यदि मारे गए, तो इस लोक में अक्षय यश और परलोक में उत्तम गति प्राप्त होगी, और जब तक सूर्य और चंद्र आकाश में हैं, और यह भारतवर्ष पृथ्वी-तल पर है, तब तक हम लोगों का नाम ले-लेकर यह हिंदू-जाति हमारी करनी के गीत गावेगी, हम पर गर्व करेगी, और हमारे दिखाए हुए रास्ते पर चलने की सदा चेष्टा करेगी। यह भूमि, जिस पर आज हमारा रक्त बहेगा, तीर्थों की भाँति सदा पवित्र समझी जायगी, और लोग इसकी मिट्टी को अपने माथे पर चढ़ाकर अपने को धन्य समझेंगे।

सिपाही—(तलवार खड़काते हुए) अवश्य श्रीमहारानीजी, अवश्य।

दुर्गावती—हमारी मौत से हमारा यह नाशवान् शरीर छूट जायगा, किंतु हमको यश-रूपी अमर शरीर प्राप्त होगा। ऐसी घड़ी किसी को बड़े पुण्य से मिलती है, फिर क्यों हम इसे तनिक से सांसारिक मोह के कारण हाथ से जाने दें ?

सिपाही—कदापि नहीं, कदापि नहीं।

दुर्गावती—जिन सिपाहियों और जागीरदारों ने ठीक समय पर पीठ दिखाई है, या कृतघ्नता-पूर्वक शत्रु की शरण ली है, या उसकी सेवा स्वीकार की है, उन्होंने मुझे, अपने धर्म को, अपने कर्तव्य-कर्म को और अपनी मातृभूमि को ही धोखा नहीं दिया है, बल्कि मनुष्यता और सदाचार के प्रति विश्वास-घात भी किया है, और अपनी मा के दूध को लजाया है।

सिपाही—सच है, (एक दूसरे की ओर देखते हुए) इसमें कोई संदेह नहीं।

दुर्गावती—मैं पूछती हूँ, क्या इस प्रकार कायरता और कृतघ्नता के सहारे अपनी जान बचाकर वे अब सदा के लिये अमर हो जायँगे ?

सिपाही—कदापि नहीं, श्रीमहारानीजी—

दुर्गावती—हाँ, यह बात दूसरी है कि उनके भाग्य में वीर-गति पाना नहीं लिखा, खाट पर पड़े-पड़े अनेक प्रकार की पीड़ाएँ भोगकर और सड़-सड़कर मरना लिखा है।

सिपाही—सच है, सच है।

दुर्गावती—(ऊपर देखकर) देखो, शत्रु का तोपखाना आग बरसा रहा है; उसके गोले तुम्हारे ऊपर हो-होकर निकल रहे हैं। अब जाओ, अपना काम करो।

सिपाही—(सिर झुकाते हुए) जो आज्ञा, महारानीजी—

(सिपाहियों और रानी का एक ओर जाना; दूसरी ओर से सुमति का प्रवेश)

सुमति—(आश्चर्य से) हैं! यहाँ भी नहीं हैं !! कहाँ गईं श्रीमहारानीजी ? (सोचती हुई) अब क्या किया जाय ? जिस क़िले में कुँवर साहब थे, उस पर भी शत्रु ने चारो ओर से घेरा डाल दिया है। अब वह किस प्रकार बाहर निकल सकेंगे ! मेरे दोनो बालक भी उसी में हैं। वे भी अपनी छोटी-छोटी बंदूक़ों से कुँवर साहब की सहायता कर रहे होंगे। (आँसू

पोंछती हुई) किंतु हाय, यह देश-द्रोह का कलंक, जो हमारे कुल को लग रहा है, वह कैसे दूर होगा? हे भगवान्, मैं हाथ जोड़कर तुझसे एक प्रार्थना करती हूँ, उसे स्वीकार कर, और मुझ दुखिया को शांति दे। वह प्रार्थना यह है कि मेरे दोनो नन्हे-नन्हे बच्चे इस युद्ध में अपने प्यारे देश की स्वतंत्रता की रक्षा के लिये अपना रक्त बहाकर इस कलंक को धो डालें, और मैं, (ऊपर देखती हुई क्रोध से) भगवान् जानता है, संसार को दिखा दूँगी कि आर्य-महिला किसको कहते हैं। भगवान् मुझे दृढ़ता दे। (आँसू पोंछती है; कोलाहल सुनकर) ओह, इस घाटी के पीछे तोप के गोलों से बचे रहकर हमारे सिपाही अनोखी वीरता दिखा रहे हैं। (फिर कोलाहल सुनकर चारो ओर देखती हुई) इधर-उधर पहाड़ होने के कारण कुछ दिखाई भी तो नहीं देता। (नेपथ्य में 'महारानी दुर्गावती की जय' की आवाज़ सुनकर, हर्ष से) अहा, यह आवाज़ कहाँ से आई? क्या शत्रु फिर पीछे को खदेड़ दिया गया? (ऊपर देखकर) किंतु उसके गोले तो बराबर, पहले की ही भाँति, आ रहे हैं। क्यों? अनुमान होता है, महारानीजी ने स्वयं एक ओर से शत्रु पर हमला किया है। (एक ओर देखकर भय और शंका से) हे भगवान्, यह क्या देखती हूँ? महारानीजी! हाय !!

(घायल दुर्गावती को चार सिपाही डोली में लाते हैं; सुमति की सहायता से महारानी डोली में से उतरकर एक ओर, सुमति का सहारा लेकर, बैठ जाती हैं)

दुर्गावती—वीरो, मैं कुछ ऐसी बहुत घायल नहीं हुई हूँ। तुम चलो, मैं शीघ्र ही फिर आती हूँ। तुम लोग इसी प्रकार लड़े जाना; विजय अवश्य होगी, इसमें कुछ भी संदेह नहीं। शत्रु के पैर उखड़ चले हैं। ऐसे समय में सावधानी से लड़ते रहो। जाओ, मैं आती हूँ।

सिपाही—जो आज्ञा।

(सिपाहियों का जाना और दुर्गावती का बेहोश हो जाना)

सुमति—(आँसू पोंछती हुई) हा, महारानीजी ने अनगिनती घाव खाए हैं। हे भगवान्, क्या तू नहीं देखता कि यह क्या हो रहा है? क्या तू न्याय नहीं करेगा?

दुर्गावती—(बेहोशी में) हमारी जीत होने में कोई संदेह नहीं। वीरो बढ़े चलो। छीन लो तोपख़ाना।

सुमति—(आप-ही-आप) धन्य है, धन्य है। (कुछ ज़ोर से) श्रीमहारानीजी—

दुर्गावती—(कुछ होश में आकर, आँखें खोलती हुई) मैं कहाँ हूँ, और तुम कौन हो?

सुमति—श्रीमहारानीजी, आप घाटी के पीछे हैं, जहाँ शत्रु के गोले का कुछ भी भय नहीं है, और मैं आपकी दासी सुमति हूँ।

दुर्गावती—हाँ-हाँ, उस देश-द्रोही की स्त्री!

सुमति—(आप-ही-आप) हे पृथ्वी, तू फट जा। (आँसू पोंछती है)

दुर्गावती—(उसे रोती देखकर) परंतु तेरा क्या दोष? तू तो आदर्श क्षत्राणी है। तेरे पति ने अपने हाथ से मुझे घायल

किया है, और तू मुझे गोद में लेकर इस प्रकार मेरी सेवा कर रही है।

सुमति—(चकित होकर) श्रीमहारानीजी, आपको उन्होंने घायल किया है?

(रोती है)

दुर्गावती—हाँ, (बतलाती हुई) यह जो मेरी छाती में घाव है, उसी के भाले से हुआ है; और जब मैं आसफ़ख़ाँ पर भाला साध रही थी, उस समय मेरा यह सीधा हाथ उसी की तलवार से—(बेहोश होती हुई) जो कहीं वह भाला चल जाता—ओह!

(बेहोश होना)

सुमति—हा भगवन्! (रोना)

दुर्गावती—(होश में आकर) क्या मेरे सिर से रुधिर बहुत निकल रहा है?

सुमति—हाँ, महारानीजी।

दुर्गावती—तभी मुझे बार-बार चक्कर आ जाते हैं। मेरे घायल होकर गिरते समय बदनसिंह ने बंदूक़ की नाल से यह मुझे मारा है। (घाव दिखलाती और बेहोश होती हुई) आसफ़ख़ाँ ने तो मना किया था।

सुमति—(रोती हुई) हे भगवान्, अब नहीं सहा जाता। हे यमराज, क्या मेरे लिये ही तेरे यहाँ मौत नहीं? हाय! आत्मघात करती हूँ तो महारानीजी की सेवा—(मुँह ढक लेती है)

दुर्गावती—(होश में आकर) उस समय मेरे अस्त्र-शस्त्र सब टूट चुके थे। (सुमति को रोती देखकर) तू रोती क्यों है? तेरा इसमें क्या दोष? तूने तो बराबर अपने कर्तव्य का पालन किया है, जिसके लिये मैं तुझे धन्यवाद देती हूँ।

सुमति—हाँ, विश्वासघातियों की कृपा से आज यह दिन भी आ गया कि कर्तव्य-पालन के लिये भी धन्यवाद दिए जाने लगे! श्रीमहारानीजी, मैं आपके चरणों की धूल हूँ, मुझे धन्यवाद ग्रहण करने का कोई अधिकार नहीं। मुझे तो आपकी सेवा में अपना यह तन अर्पण कर देने का अधिकार है, सो अपने उस अधिकार का मैं उपयोग कर रही हूँ। जिस दिन यह अधिकार मुझसे छिन जायगा, उस दिन यह शरीर भी नहीं रहेगा।

दुर्गावती—तेरे बच्चे कुशल से तो हैं?

सुमति—श्रीमहारानीजी, कुँवर साहब जिस क़िले में थे, उसको शत्रु ने घेर लिया है, ऐसा सुना जाता है; उसी में मेरे बच्चे भी हैं।

दुर्गावती—तो कुछ चिंता की बात नहीं। मुझे पूरा विश्वास है कि वीरनारायण शीघ्र ही शत्रुओं को परास्त करके आवेगा।

सुमति—भगवान् करे, यही हो।

(वीरनारायण का प्रवेश)

वीरनारायण—(दुर्गावती के पैर छूता हुआ) माताजी, प्रणाम। आपके आशीर्वाद से क़िले पर से मैंने शत्रुओं को हटा।

हैं। (दुर्गावती से) किंतु माताजी, आप इतनी अधिक घायल कैसे हो गईं? बड़े आश्चर्य की वात है!

दुर्गावती—(अपने सहारे बैठकर, वीरनारायण के सिर पर हाथ फेरती हुई) वेटा, मैं तुम्हारे कृत्य से बहुत संतुष्ट हूँ। तुम वही कर रहे हो, जो एक सच्चे क्षत्री को करना चाहिए। मुझे तुम्हारी करनी पर गर्व है कि मेरी कोख से तुम दूसरे अभिमन्यु पैदा हुए। वेटा, तोपखाने के बाईं ओर से धावा करते समय मैंने ये घाव खाए हैं। तुम कुछ चिंता मत करो। जाओ और देखो कि शत्रु की सेना भाग खड़ी हुई या नहीं? यदि भाग रही हो, तो तुम अपनी जान हथेली पर रखकर तोपख़ाना छीनने का प्रयत्न करो, क्योंकि ऐसा करने से विजय प्राप्त करना वहुत सहल हो जायगा। जाओ, मैं तुम्हें आशीर्वाद देती हूँ।

वीर०—जो आज्ञा।

(प्रणाम करके जाता है)

सुमति—(ऊपर से आ-आकर गिरते हुए तीरों को देखकर) श्रीमहारानीजी, देखिए, पहले तो गोले ही आ रहे थे, अब तीर भी आने लगे।

दुर्गावती—ऐसी स्थिति में तीरों का आना वहुत ही बुरा है, क्योंकि गोले तो ऊपर से ऊपर ही निकल जाते थे, परंतु तीर ठीक यहीं आकर गिरेंगे। यह तरकीब शत्रु के किसी वहुत ही रण-कुशल सैनिक ने सोची है।

(एक तीर का दुर्गावती की आँख में लगना)

सुमति—(घबराकर) हाय, यह तीर आपके बहुत बुरी जगह लगा। (तीरों का बरसना, सुमति का इधर-उधर देखकर कहना) आइए, इधर ओट में हो जाइए। (दुर्गावती एक हाथ से तीर को पकड़े हुए सरक-सरककर एक ओर हो जाती है)

दुर्गावती—(तीर को निकालती हुई) इस तीर से मेरी बाईं आँख फूट गई।

सुमति—(दुर्गावती की आँख में से रक्त निकलता देखकर) श्री-महारानीजी, मैं कहीं-न-कहीं से अभी जल लाती हूँ। हाँ, इस तीर से आपको बड़ा कष्ट पहुँचा।

दुर्गावती—यहाँ इस समय जल कहाँ मिलेगा? तुम व्यर्थ कष्ट न उठाओ। (आँख पर हाथ रखती हुई) किंतु, हाँ, अब ज्ञात हुआ, इस तीर की अनी मेरी आँख ही में रह गई है, इसी से यह वेदना हो रही है। (दुर्गावती लेट जाती है)

(दूसरे तीर का आकर गर्दन में लगना)

सुमति—हाय भगवान्! यह तीर और भी बुरी जगह लगा। श्रीमहारानीजी, यहाँ से भी उठ चलना ही ठीक होगा। खेद है, तीरों से यहाँ भी रक्षा नहीं हो सकी।

(इधर-उधर से देखती है)

दुर्गावती—(तीर निकालती हुई) यह तीर विष का बुझा हुआ है; इससे मेरे जलन हो रही है।

सुमति—तो इसका कुछ उपाय?

दुर्गावती—उपाय तो अब ईश्वर के हाथ में है, किंतु मरने से पहले मैं केवल यही सुन लेना चाहती हूँ कि वीरनारायण ने तोपख़ाना छीन लिया।

(कोलाहल होना; तीन सैनिकों का प्रवेश)

एक सैनिक—(प्रणाम करता हुआ) श्रीमहारानीजी, श्रीकुँवर साहब ने शत्रु को बड़ी वीरता के साथ दो बार खदेड़ दिया था, और विजय होने ही को थी कि सरदार भगेल्ह-सिंहजी शत्रु से जा मिले, और उसकी सेना को; गढ़ की दाहनी ओर का नाला पार कराकर, घाटी के पीछे ले आए हैं। बदनसिंहजी भी उनके साथ हैं। वे लोग पीछे से हमला करने के लिये अब इसी ओर बढ़े चले आ रहे हैं। इस कारण सबकी सलाह है कि आप यहाँ से हट जायँ। हाथी तैयार है।

दूसरा—क्योंकि इस देश की स्वाधीनता आपके जीवित रहने पर ही निर्भर है। रही लड़ने की, सो हम लोग अपनी-अपनी माताओं के दूध की शपथ खाकर कहते हैं कि जब तक तन में प्राण रहेंगे, लड़ेंगे।

तीसरा—श्रीमहारानीजी, इस समय यही परम आवश्यक है। हाथी तैयार है। आइए, इस पर विराजिए, और चौरागढ़ को पधारिए। आप हमारी शक्ति हैं; विना आपके हम लोग कैसे लड़ सकेंगे? अब भी समय है—

दुर्गावती—(कष्ट-पूर्वक बैठकर) वीर सैनिको, तुम्हारा कहना

ठीक है, परंतु शत्रु को पीठ दिखाकर अपनी जान बचाना क्षत्रिय-धर्म नहीं। मैं नहीं चाहती कि मेरी मृत्यु के बाद लोग कहें कि दुर्गावती लड़ी तो सही, किंतु एक बार अपनी जान बचाने के लिये उसने मैदान से पीठ भी दिखाई थी। वीरगण, जन्म और मृत्यु हमारे कर्मों की माला के मनके हैं। जो अपने कर्मों के अनुसार जन्म लेता है, वह मरता भी अवश्य है। अस्तु। तुम लोग उनको (हाथ के इशारे से बतलाती हुई) इधर से रोकने का प्रयत्न करो।

एक सैनिक—किंतु, श्रीमहारानीजी, हम लोग तो चारो ओर से घिर गए हैं।

दुर्गावती—वीरो, घबराओ मत। वीरनारायण अभी शत्रु की सेना को काटकर तुम्हें बचावेगा। वह तोपखाने की ओर गया है; किंतु जब उसे यह ज्ञात होगा कि घाटी के पीछे भी शत्रु आ गया है, तब वह तुरंत यहाँ आवेगा। खेद है, मेरे कृतघ्न सरदारों ने शत्रु को गुप्त मार्ग बतला दिया। जाओ—

सैनिक—जो आज्ञा। (प्रणाम करके गए, दुर्गावती का मूर्च्छित होना)

सुमति—हा, श्रीमहारानीजी असह्य पीड़ा के कारण मूर्च्छित हो गईं। यह सब क्या हो रहा है? घर ही के आदमी घर में आग लगा रहे और प्रसन्न हो रहे हैं! हा, इस कृतघ्नता का, इस विश्वासघात का, प्रायश्चित्त यह जाति किस प्रकार करेगी?

अनुमान होता है कि यह सदा दासता की ही बेड़ियों से जकड़ी रहेगी। (एक ओर देखकर क्रोध-पूर्वक उठती है) हैं ! अब क्या अंत समय में श्रीमहारानीजी का अपमान करने की इच्छा हुई है ? ठीक है; यही बात है। परंतु जब तक मेरे तन में प्राण हैं, तब तक इसे पूरा न होने दूँगी। महारानीजी के छिन्न-भिन्न कलेवर को कठोर वचनों और व्यंग्य-बाणों से और अधिक छिन्न-भिन्न न होने दूँगी। अपना सुहाग खोकर, अपने प्राण देकर श्रीमहारानीजी को अपमान से बचाऊँगी। वाह, क्या अच्छे लग रहे हैं ! यह मेरे पति सरदार बदनसिंहजी आ रहे हैं। नहीं-नहीं, देश की स्वतंत्रता को विधर्मी विदेशियों के हाथ बेचनेवाला साक्षात् विश्वासघात बड़ी ऐंठ में चला आ रहा है ! धिक्कार है, धिक्कार है ! (ऊपर देखती हुई) हे भगवान्, जैसा मैं चाहती थी, वैसा ही अवसर तूने कृपा करके मुझे दिया है ; अब इतना बल देने की और भी कृपा कर कि मैं अपने मन पर दृढ़ता-पूर्वक क़ाबू रख सकूँ।

(बदनसिंह का प्रवेश)

बदन०—(सुमति की ओर बढ़कर) प्यारी सुमति—

सुमति—चल, हट, दूर हो, विश्वासघाती, देश-द्रोही, कृतघ्न, नीच !

बदन०—यह किससे कह रही हो, प्यारी ? क्या मुझे नहीं पहचाना ?

सुमति—(आप-ही-आप) भगवान्, दया कर, दया कर ; मैं

जिस दृढ़ता के आसन पर बैठी थी, वह मेरे नीचे से धीरे-धीरे खिसका-सा जा रहा है। मुझे साहस दे, बल दे। (तमंचा निकालकर बदनसिंह पर दागती हुई) चल, अपने रस्ते जा, देश-द्रोह के पुतले, (बदनसिंह का गिरना) अपनी लगाई हुई आग में आप ही भस्म हो जा।

बदन०—सुमति, प्यारी सुमति, तुम्हारे ही लिये मैंने यह सब कुछ किया, और तुमने मुझसे बात भी न करके मुझे यों ही मार डाला! क्या अपने पति की हत्या करना भी कहीं शास्त्रों में लिखा है?

सुमति—क्या मैंने अपने पति की हत्या की है? नहीं-नहीं, मैंने तो साक्षात् विश्वासघात और देश-द्रोह की जान ली है, और अपना कर्तव्य पूरा किया है।

बदन०—याद करो, सुमति, याद करो, एक दिन तुमने अग्नि को साक्षी करके मेरा हाथ पकड़ा था, और जन्म-भर निबाहने की शपथ ली थी।

सुमति—तो तुमने जन्म-भर कहाँ निबाहा? यदि मैंने तुम्हारे प्रति अपराध भी किया, तो तब जब तुम पहले ही मेरे और बच्चों के प्रति अपराध कर चुके थे, और अपने देश की प्यारी स्वाधीनता के रक्त से अपने हाथ रँग चुके थे। तुम केवल अधर्मी ही नहीं, देश-द्रोही भी हो। तुम्हारे मारने में पाप कैसा?

बदन०—अच्छा-अच्छा, जैसे सीता और सावित्री ने पातिव्रत-धर्म निबाहा था, उससे भी बढ़कर तुमने निबाहा

सही। मैंने तुम्हीं लोगों के पीछे यह सब किया था, और तुमने यों बदला दिया! यदि, जैसा तुम कहती हो, मैंने अपने कर्मों का फल पाया है, तो तुम भी अपने कर्मों का फल पाओगी। मेरे सब किए-धरे पर पानी फेर दिया। मेरे मन की मन ही में रह गई। लो, मैं तो अब चलता हूँ। ओह!

(मरता है)

सुमति—(बदनसिंह की ओर देखती हुई) हा भगवान्, तूने स्त्री के हृदय को क्यों इतना कोमल बनाया है? अपने आप ही मेरे मन में भारीपन-सा आ चला है। क्या मैंने कुछ अनुचित किया है? नहीं-नहीं, महारानीजी को अपमान से बचाना मेरा कर्तव्य था।

दुर्गावती—(होश में आकर और बदनसिंह की लाश देखकर) सुमति, क्या देखती हूँ?

सुमति—श्रीमहारानीजी, अपना कर्तव्य समझकर जो काम मैंने किया है, वह भी मेरे हृदय में शंका का बोझ बढ़ा रहा है। मैंने पहले ही निश्चय कर लिया था कि आपके सम्मान की रक्षा के लिये करने-न करने के सब काम करूँगी, और अपने ही सगों का रक्त बहाकर प्राप्त किए गए राज-सुख को पैरों से भी स्पर्श न करूँगी, चाहे कुछ भी हो जाय। श्रीमहारानीजी, अब मैं आपसे विदा माँगती हूँ, क्योंकि पगली-सी हो रही हूँ। कुँवर साहब मेरे बालकों की रक्षा करेंगे।

दुर्गावती—तुझे धन्य है, क्योंकि अपने कर्तव्य-कर्म को

निबाहने के लिये तूने रानी-पद को तुच्छ समझकर लात मारी है, और संसार को देश-द्रोही के प्रति कैसा व्यवहार करना चाहिए, यह दिखाने के लिये स्वयं ही अपने सुहाग तक को गोली मार दी है। विश्वास रख, ईश्वर तुझे अच्छी गति देगा। तूने अपने पति की हत्या की है, सो पति समझकर नहीं, देश-द्रोही और विश्वासघाती समझकर। निराश मत हो। वीरनारायण इन शत्रुओं को मारता-काटता अभी आता ही होगा। अंत में विजय हमारी ही होगी। आग लगानेवाले पलीते को तूने बुझा दिया है।

सुमति—किंतु जब वह आग लगा चुका, और सर्वनाश कर चुका, तब। (रानी के पैर छूकर) श्रीमहारानीजी, न-जाने क्यों अब यह कलेवर मुझे भारी बोझ-सा मालूम हो रहा है। इसे छोड़ने की आज्ञा दीजिए।

दुर्गावती—यदि तू जीती रहेगी, तो अपने बालकों की देख-भाल कर सकेगी। तेरी वीरता और सेवाओं के बदले में वीरनारायण तेरे बालकों को जागीरें देगा। (कोलाहल) देख, सुन, मैं समझती हूँ कि वीरनारायण आ पहुँचा।

(वीरनारायण का प्रवेश)

वीर०—(दुर्गावती के पैर छूकर) आपके आशीर्वाद से शत्रु को काटता हुआ मैं यहाँ तो आ पहुँचा, किंतु मेरी सेना पीछे ही रह गई।

दुर्गावती—तो क्या शत्रु तुम्हारा पीछा कर रहा है?

वीर०—हाँ, वह तो पीछे ही आ रहा है।

दुर्गावती—बेटा, महाभारत के युद्ध में सात महारथियों ने अभिमन्यु को घेरकर मारा था, वैसी ही दशा तेरी होती दीखती है ; क्योंकि अब हम चारो ओर से शत्रु से घिर गए हैं, इसमें कोई संदेह नहीं रहा।

वीर०—नहीं माताजी, जैसे शत्रुओं को काटता हुआ मैं भीतर घुस आया हूँ, उसी प्रकार बाहर भी निकल सकता हूँ, किंतु आप—आपको इस दशा में नहीं छोड़ना चाहता।

दुर्गावती—और, तेरी सेना भी बिछुड़ गई ! यदि सेना न बिछुड़ती, और किसी ओर से भी शत्रु खदेड़ दिया जा सकता, जैसी कि मैं आशा कर रही थी, तो भी विजय निश्चित थी। किंतु अब क्या हो सकता है ? (सोचती है)

वीर०—माताजी, यदि मेरे बाहर निकल जाने से ही कोई लाभ होना सम्भव हो, तो आज्ञा दीजिए, मैं निकल जाऊँ, और चेष्टा करूँ।

दुर्गावती—तुम बाहर निकलकर एक बार फिर युद्ध करके शत्रु को खदेड़ने का प्रयत्न करो। ईश्वर तुम्हें विजय प्रदान करेगा। यदि कुछ न हो सके, तो क़िले में जौहर की आज्ञा दे देना। मेरा तो जो होना था, हो चुका।

वीर०—जौहर की आज्ञा तो मैं दे आया हूँ। क़िले का फाटक बंद है। वहाँ भीतर सब सावधान हैं, जैसा अवसर देखेंगे, करेंगे। (कोलाहल)

दुर्गावती—शत्रु आ पहुँचा। मेरी आँखों के तारे, इधर आ। (वीरनारायण का दुर्गावती की गोद में जाना; दुर्गावती का उसे हृदय से लगाकर प्यार करना)

दुर्गावती—(प्रेम के आँसू बहाती हुई) तूने मेरे दूध को नहीं लजाया, ईश्वर तुझे वही गति देगा, जो सच्चे क्षत्रिय को मिलती है। संसार में तेरा नाम अमर हो। भारतवर्ष के बच्चे तुझे अपना पथ-प्रदर्शक और आदर्श मानकर, तेरा अनुकरण करते हुए, स्वतंत्रता के लिये, अपने प्राणों का मोह छोड़कर, इसी प्रकार युद्ध करें। जा बेटा, जा। सूर्य-मंडल को भेदता हुआ चला जा, और स्वर्ग में जाकर अभिमन्यु के साथ खेल।

(कोलाहल के साथ शत्रु का आना और वीरनारायण को घेर लेना; उनसे लड़ते हुए वीरनारायण का बाहर जाना)

सुमति—श्रीमहारानीजी, कुँवर साहब इस प्रकार घिर गए हैं; आज्ञा दीजिए, मैं जाऊँ, और उनकी रक्षा करने का प्रयत्न करूँ। अच्छा हुआ, ये दुष्ट आपको न देख पाए।

दुर्गावती—जो होना था, हो चुका। (धड़ाका होना और शत्रुओं का अट्टहास) मंत्री और सेनापति के साथ पुत्र ने भी वीर-गति पाई। पाँसा उलटा पड़ा। अब जो इच्छा हो, करो। गढ़मंडल की स्वतंत्रता के सूर्य को घर के द्वेष ने ही राहु बनकर ग्रस लिया! अब, इस समय, अपने ही रक्त की नदी में नहाकर और अपने ही जीवन का दान देकर प्रायश्चित्त किया जा सकता है।

सुमति—श्रीमहारानीजी, ये लोग इधर ही फिर आ रहे हैं, मैं आगे जाकर इन्हें रोकती हूँ, जिसमें ये आप तक न आ सकें।

(तमंचा ठीक करके जाती है)

दुर्गावती—यदि इस समय भी मेरे सरदार मेरा साथ देते, तो मैं उन्हें जीतने का उपाय बतला देती। परंतु अब यह सब सोचना व्यर्थ है। कर्म की रेख से या विधाता की इच्छा से, पाँसा उलटा पड़ गया। मंत्री और सेनापति के साथ पुत्र ने भी वीर-गति पाई! विष के बुझे तीर का प्रभाव मुझे भी उसी ओर खींचे लिए जा रहा है। (कोलाहल और धड़ाका सुनकर उचककर एक ओर देखती हुई) सुमति भी परम धाम को सिधार गई। धन्य आदर्श क्षत्राणी! परमात्मा तुझे अवश्य सद्गति देगा। अब ये इधर ही आ रहे हैं। अब की वार अवश्य मेरा अपमान करेंगे। (इधर-उधर देखने पर एक अंकुश पड़ा दिखाई देता है; उसकी ओर सरककर जाती और अंकुश उठा लेती है) हे अंकुश, तू बहुत-से हाथियों को हाँक चुका है, अब मेरे प्राणों को इस शरीर में से हाँक दे। (ऊपर देखती हुई) हे परमात्मा, तेरी माया अपार है, तुझको वारंवार प्रणाम करती हुई, अपना कर्तव्य-पालन करने के पश्चात्, यह तेरी क्षुद्र दासी तेरी शरण में आती है। इसे ले। (अंकुश मारकर आत्महत्या करती है ; शत्रु के सिपाही हल्ला करते हुए आते हैं, और रानी की मृत देह देखकर अचंभा करने लगते हैं ; इतने ही में

नंगी तलवारें लिए हुए कुछ राजपूतनियाँ आती हैं; मारपीट होने लगती हैं।)

पर्दा गिरता है

तीसरा दृश्य

रणभूमि के पास एक स्थान

(आसफ़ख़ाँ और एक मुसलमान सरदार)

आसफ़०—ख़ुदा-तआला ने फ़तह तो हमीं को बख़्शी, मगर सिपाही भी हमारे ही ज़्यादा काम आए।

सरदार—जी हाँ, और लूट की मनाही होने से फ़ौज में कुछ नाराज़ी भी फैल रही है।

आसफ़०—मैं तो ख़ुद चाहता था कि लूट हो, मगर जहाँ-पनाह के हुक्म के ख़िलाफ़ कुछ नहीं कर सकता।

सरदार—अगर आप हुक्म दें, तो लूट करा दी जाय; जहाँ-पनाह तक इसकी ख़बर पहुँचाने जाता ही कौन है!

आसफ़०—यह बात ठीक है, और मेरी समझ में आती है; लेकिन किसी ने अगर चुगली खाई, तो उसकी सारी जवाबदेही मेरे ही ऊपर होगी। हाँ, अगर तुम लोगों से न रहा जायगा, तो मैं कुछ सोचूँगा। (आप-ही-आप) फिर ऐसा मौक़ा कहाँ मिलेगा! मगर राजा साहब का डर है, सो इस काँटे को भी यहीं दूर कर दूँ—जैसे बने वैसे। (सरदार से) मगर यह तो बतलाओ, महारानी

को गिरफ़्तार करने के लिये जो लोग भेजे गए थे, वे अभी तक लौटे क्यों नहीं ?

सरदार—आपका हुक्म हो, तो तलाश करूँ।

आसफ़०—हाँ, जाओ। (सरदार गया) (सोचता हुआ) राजा साहब का ख़ातमा करना ज़रूरी है; एक म्यान में दो तलवारें नहीं रह सकतीं। ठीक है, ठीक है। एक बड़ा भारी जलसा किया जाय; उसी में किसी सिपाही को इशारा करके उनका ख़ातमा करा दिया जाय, और जहाँपनाह से कह दिया जाय कि जलसे में शराब पीकर आए थे, पैर फिसल जाने से गिरकर मर गए। या और कोई बात बना दी जायगी।

(एक सिपाही का आना)

सिपाही—हुज़ूर, औरतों ने महलों में आग लगा दी, और सब-की-सब उसी में जल मरीं।

आसफ़०—(अचरज से) ऐं ! और तुम खड़े-खड़े देखा किए !

सिपाही—हुज़ूर, हम लोग तो तब तक क़िले के भीतर घुसने भी न पाए थे। फाटक बंद था। जब वह तोड़ा जाने लगा, तभी यह सब काम हो गया।

आसफ़०—जाओ, जाओ, जल्दी जाओ, और उस आग को बुझाकर जो कुछ माल बच सके, उसे बचाओ। (सिपाही गया) मुझे ताज्जुब होता है, इन राजपूत औरतों की बेवकूफ़ी और हिम्मत पर—

(चार सिपाहियों का प्रवेश)

एक सिपाही—हुज़ूर, जहाँ पर महारानी के घायल होकर

जा पड़ने की खबर थी, वहाँ पर उनका पता नहीं चला। हाँ; राजा बदनसिंह और उनकी बीबी की लाशें ज़रूर पड़ी थीं, जिनको उन्हीं के कोई रिश्तेदार उठाकर ले गए। महारानी के बारे में बहुत पूछताछ के बाद कुछ ऐसा पता चलता है कि उनकी मौत ज़ख्मों के सबब से हो गई थी, और जब हमारी फ़ौज के आदमी उधर पहुँचे, तब एकाएक नंगी तलवारें लिए कुछ औरतें, शायद क़िले में से निकलकर, उधर झपट पड़ीं, और महारानी और उनके कुँवर की लाशें उठा ले गईं। यह बात ठीक भी मालूम होती है; क्योंकि उस जगह पर हमारे बहुत-से सिपाही मरे और अधमरे पड़े हुए हैं।

आसफ़०—चलो हो गया! पता चल गया। क़िले की आग में महारानी की लाश भी फूँक दी गई। मगर अफ़सोस, राजा साहब भी काम आ गए। अच्छा, अब तुम लोग डेरों में आराम करो, जाओ। (सिपाहियों का सलाम करके जाना) राजा साहब से पिंड छूटा, अब इन राजपूत सरदारों को भी खतम ही कर दिया जाय, वरना मुमकिन है, ये कंबख़्त लूट न होने दें, और सूबे-दारी भी इन्हीं में से किसी को मिल जाय। (सोचता हुआ) ठीक है।

(एक बूढ़े मौलवी का प्रवेश)

मौलवी—मुबारक हो, बेटा, फ़तह मुबारक हो।

आसफ़०—तशरीफ़ लाइए, उस्ताद, मैं आप ही की याद कर रहा था। अब यह बतलाइए कि यहाँ के जिन सरदारों ने

हमारा साथ दिया है, उनको क्या इनाम दिया जाय ?

मौलवी—(सोचता हुआ) मेरी तो राय यह है कि उन्हें बिना आगा-पीछा सोचे मौत के घाट उतार दिया जाय।

आसफ़०—ऐसा क्यों किया जाय ?

मौलवी—जिसका नमक खाकर वे इतने बड़े हुए, जब उसी का साथ उन्होंने नहीं दिया, तब तुम्हारा या जहाँपनाह का साथ कब देंगे ?

आसफ़०—इसलिये ?

मौलवी—देर न करनी चाहिए, और उन सबको जल्द ख़तम करा देना चाहिए।

आसफ़०—किस तरह ?

मौलवी—अपने कुछ आदमियों से झगड़ा कराकर, या जलसे में बुलवाकर।

आसफ़०—और अगर जहाँपनाह ने इस पर सवाल किया तो ?

मौलवी—कह देना कि फ़तह होने के बाद ये सब-के-सब मिलकर मुझसे झगड़ा करके मुल्क छीनना चाहते थे। कह देना कि इन लोगों ने रात में चुपचाप मेरे डेरे पर हमला किया, और बड़ी मुश्किल से क़ाबू में किए जा सके।

आसफ़०—और ऐसा हो भी सकता है। इसमें अनहोनी बात कौन-सी है कि ये लोग अब मुझसे झगड़ने लगें, या मेरे डेरे पर रात में हमला कर दें।

मौलवी—यही तो मैं भी कह रहा हूँ।

आसफ़०—जहाँपनाह ने जिन बातों के न करने की ताकीद की थी, वे जहाँ तक हो सका, नहीं की गई। उन्होंने यह कब कहा था कि ऐसे ख़तरनाक सरदारों से हाथ न लगाना।

मौलवी—भला कोई बात भी हो!

आसफ़०—बस, तो फिर, उस्ताद, आप ही अब इनका इंतज़ाम करें, और जलसे की तैयारियाँ शुरू करा दें। मैं आपको एक हज़ार आदमी देता हूँ। चलिए, मेरे साथ डेरे की तरफ़ चलिए।

मौलवी—चलिए।

(दोनो का जाना)

चौथा दृश्य

स्थान—स्वर्ग का एक भाग

(इंद्र के एक यक्ष के साथ दिव्य शरीर धारण किए हुए महारानी दुर्गावती और वीरनारायण का प्रवेश)

यक्ष—महारानीजी, यही स्वर्ग का वह भाग है, जिसमें वे वीर अनेक प्रकार के आमोद-प्रमोद में अपना समय व्यतीत करते हैं, जिन्होंने अपनी ज़ाति तथा देश की स्वतंत्रता के लिये अपना जीवन दान किया हो। यहाँ आपको अपनी-जैसी अनेक महान् आत्माओं के दर्शन होंगे, और यहीं अब आपको रहना होगा।

दुर्गावती—(चारो ओर देखती हुई) यह तो बड़ा रमणीक स्थान है।

यक्ष—हाँ, यह वह स्थान है, जहाँ आते ही चित्त की सब बुरी वासनाएँ दूर हो जाती हैं। यही वह स्थान है, जो ब्रह्म-लीन योगियों को सिद्धियों की कामना करने पर बड़े परिश्रम और अभ्यास द्वारा प्राप्त होता है। और, यही वह स्थान है, जहाँ कर्तव्य-पथ पर डटे रहनेवाले निर्भय वीरों की आत्माएँ सूर्य-मंडल को भेदकर आती हैं।

दुर्गावती—जो आत्माएँ यहाँ आती हैं, क्या वे सदा यहीं रहती हैं? क्या मैं यहाँ भीष्म, अर्जुन आदि के दर्शन कर सकती हूँ?

यक्ष—यहाँ आनेवाली आत्माएँ अपनी प्रवृत्ति के अनुसार संसार अथवा मोक्ष की ओर चली जाती हैं। अनेक जन्मों के संचित संस्कारों के अनुसार किसी की प्रकृति संसार का उपकार करने के निमित्त फिर मनुष्य-शरीर धारण करने की होती है, और किसी की परमात्मा में जा मिलने की। अतएव प्राचीन काल के वीर यहाँ अब नहीं रहे। हाँ, हाल के कुछ वीरों के दर्शन अवश्य हो जायँगे। (दिव्य संगीत की ध्वनि सुन पड़ती है) देखिए, आपके पधारने पर यहाँ उत्सव और हर्ष मनाया जा रहा है।

दुर्गावती—मैं इस मधुर गान को सुनना चाहती हूँ।

यक्ष—हाँ, सुनिए।

(गाना)

स्वागत, स्वागत, आओ, आओ ;
यश-सौरभ से दिव्य धाम को पावन कर महकाओ ।
बड़े-बड़े उठ गए भूमि से, बली काल ने खाया ;
किंतु धन्य हैं आप, धर्म से दिव्य अमर पद पाया ।
स्वागत०

(दुर्गावती चकित और प्रसन्न होती है; पर्दा फटता है; कितने ही वीर बैठे हैं; अप्सराएँ गा रही हैं; इनको सामने देखकर सब 'स्वागतम्', 'स्वागतम्' कहकर खड़े होते हैं; दुर्गावती प्रणाम करती है)

यक्ष—(दुर्गावती से) अब मैं इन महात्माओं से आपका परिचय करा दूँ ?

दुर्गावती—बड़ी कृपा होगी।

यक्ष—(एक वीर की ओर संकेत करके)

टिड्डी-दल से टूट पड़े जो सब देशों पर ;
खेत उजाड़े, लूट लिया धन, गिरा दिए घर ।
उन्हीं शकों ने जब भारत पर क़दम बढ़ाया ;
तब भुनगा-सा उनको मसला, मार भगाया ।
घर-घर में गाए जा रहे जिनके अद्भुत कृत्य हैं ;
वह वीर-शिरोमणि राम-से वही विक्रमादित्य हैं ।

(दुर्गावती प्रणाम करती है)

यक्ष—(दूसरे की ओर संकेत करके)

एक समय जब था यवनों ने द्वंद मचाया,
उनका भूप सिल्यूकस भारत तक था आया,
तब उसकी गति रोक जिन्होंने उसे हराया,
सर्वस छीना और मारकर दूर भगाया,
वह मौर्य-वंश के मुकुट-मणि, भारत के संतापहर,
यह चंद्रगुप्त हैं, कीर्ति है जिनकी दुनिया में अमर।

(दुर्गावती प्रणाम करती है)

यक्ष—(तीसरे की ओर संकेत करके)

सिंध-देश पर चढ़े विधर्मी थे जब पहले,
तब जिनसे भिड़ने पर थे उनके दिल दहले,
प्रिय स्वदेश की स्वतंत्रता की रक्षा के हित,
किए जिन्होंने लड़ते-लड़ते प्राण समर्पित,
वह क्षत्रिय-कुल के दीप, यश जिनका जग में छा रहा,
हैं दाहिर ये, जिनका विरद अब तक गाया जा रहा।

(दुर्गावती प्रणाम करती है)

यक्ष—(चौथे की ओर संकेत करके)

कई बार रण में विदेशियों को था मारा,
करके उनको क़ैद, कर दिया फिर छुटकारा,
किंतु फूट ने बना-बनाया काम बिगाड़ा,
घरवालों ही ने अपना धन-धाम उजाड़ा,
माताएँ जिन-सा चाहतीं पुत्र प्रसवना आज हैं,
चौहान-वंश के सूर्य यह राजा पृथ्वीराज हैं।

(दुर्गावती प्रणाम करती है)

यक्ष—(पाँचवें की ओर संकेत करके)

कटा दिया निज शीश, किंतु अपना प्रण साधा,
पड़ने दी कर्तव्य-धर्म में एक न बाधा,
सब कुछ खोकर निज कुल की रक्खी मर्यादा,
वीरों को आदर्श दिखाया सीधा-सादा,
जिनको सारा जग जानता, कर्म-वीर मति-धीर हैं,
वह क्षत्रिय-कुल के रत्न यह छठे वीर हम्मीर हैं।

यक्ष—(छठे की ओर संकेत करके)

जब स्वतंत्रता-दीप लगा बुझने स्वदेश से,
उसे बचाने खड़े हुए जो भीम-वेश से,
खाए लाखों घाव, अंत में जान गँवाई,
कृतघ्नता ने किंतु विजय-लक्ष्मी छिनवाई,
बच्चा-बच्चा तक जानता जिनके पावन नाम को,
क्या कहकर बतलाऊँ, अहो, उन राणा संग्राम को ।

दुर्गावती—(प्रणाम करती हुई) मेरा जीवन आज धन्य हुआ, जो मुझे आप-जैसी पवित्र अत्माओं के दर्शन हुए।

आत्माएँ—(यक्ष से) अब कुछ इनका भी तो परिचय कराइए।

यक्ष—रक्षा-हित स्वदेश की जिसने तन-मन वारा,
लिया खड्ग, रण-बीच शत्रु को था ललकारा,

(वीरनारायण की ओर संकेत करके)

जिसका सुंदर कुँवर वीरनारायण प्यारा,
लड़ता-लड़ता गया युद्ध में रिपु से मारा,
जिसका यश गाते वीर नर तथा नारियाँ भी सती,
वह दुर्गा की प्रतिमूर्ति यह है देवी दुर्गावती ।

सब—धन्य है, धन्य है।

यक्ष—(दुर्गावती से) चलिए, अब और आत्माओं के दर्शन कीजिए।

आत्माएँ—चलने से पहले, आइए सब कोई मिलकर भगवान् से कुछ प्रार्थना कर लें।

(सबका प्रार्थना करना)

(गाना)

रहे ऐसी भारत-संतान,
स्वतंत्रता के लिये करे जो तन-मन-धन बलिदान। रहे ऐसी ०
तजे न कभी धर्म का पथ कर्तव्य-कर्म को जान,
भव-सागर तरने को ले-ले कर्मयोग-जलयान। रहे ऐसी०
एका, प्रेम, सुमति, सुख-साधन रहें, बढ़े धन-मान,
भटके जग को मार्ग दिखा दे अपने को पहचान। रहे ऐसी ०

पर्दा गिरता है।